अगस्त 2019

आई.एस.ओ. 9001: 2008 संगठन
मूल्य: ₹30

भाकृअनुप
ICAR

खेती

• इस अंक में •

उपजाऊ मृदा के लिए वर्मीकम्पोस्ट

चारा फसलों की उन्नत किस्में

समय की मांग है जैविक पोल्ट्री उत्पादन

पशुओं के लिए सस्ते एवं सुलभ आहार

अश्विनी कुमार रॉय
भाकृअनुप-राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)

कुछ लोग पशुओं को भी मनुष्य की तरह ही समझते हैं। उन्हें वह सब खिलाने की कोशिश करते हैं, जो वे स्वयं खाते हैं। पशुओं के कल्याण के विषय में सोचना और उन्हें अच्छा पोषण देना अच्छी बात है, परन्तु उन्हें अपने ही स्वाद के अनुसार आहार देना सही नहीं है। मनुष्य के शरीर में केवल एक ही कक्ष वाला साधारण उदर होता है, जबकि रोमंथी प्राणियों जैसे-गाय व भैंस के शरीर में उदर चार भागों में बंटा हुआ होता है। हम जो भी भोजन करते हैं, वह उदर द्वारा ही पचा लिया जाता है तथा छोटी आंत में अवशोषित होने लगता है। रोमंथी पशुओं को हम जो भी खिलाते हैं वह उदर के सबसे बड़े भाग 'रुमेन' अथवा प्रथम अमाशय में इकट्ठा होता रहता है। 'रुमेन' में लाखों सूक्ष्मजीवी, बैक्टीरिया, प्रोटोजोआ एवं फफूंद होते हैं, जो किण्वन द्वारा आहार का निरंतर अपघटन करते हैं।

भूसे में स्टार्च होता है, जिससे वसीय अम्ल बनते हैं। हरे चारे में पाए जाने वाले प्रोटीन से अमोनिया बनती है, जो सूक्ष्मजीवियों द्वारा 'माइक्रोबियल' प्रोटीन बनाने के काम आती है। कुछ अमोनिया लीवर द्वारा यूरिया में परिवर्तित होकर या तो निष्कासित हो जाती है या पुन: चक्रण में सूक्ष्मजीवियों द्वारा प्रोटीन निर्माण के काम आती है। आहार द्वारा ग्रहण की गई गैर-प्रोटीन वाली नाइट्रोजन का भी यही अंजाम होता है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि रोमंथी पशु कार्बोहाइड्रेट्स, प्रोटीन एवं वसा को उनके वास्तविक रूप में ग्रहण नहीं करते बल्कि इन सबको वसीय अम्लों में बदल देते हैं। बाद में ये वसीय अम्ल दैहिक आवश्यकता अनुसार विभिन्न उपापचय गतिविधियों में भाग लेते हैं, तो फिर इन्हें महंगे प्रोटीन एवं वसायुक्त पदार्थ खिलाने का क्या लाभ होगा? हमारे डेयरी किसानों को इस विषय पर अवश्य ही विचार करना चाहिए।

पशुओं को केवल सस्ते स्रोतों से मिलने वाले कार्बोहाइड्रेट्स, प्रोटीन एवं वसा खिलाए जाने चाहिए। महंगे स्रोतों से प्राप्त आहारीय प्रोटीन अथवा वसा ही डेयरी के व्यवसाय को अनार्थिक बना देते हैं। वैसे भी रोमंथी जीव अपने शरीर के लिए सभी आवश्यक तत्व वनस्पति चारे से जुटाने में सक्षम हैं। अगर भैंस को दूध पिलाकर ही दूध बनाना है तो इसका क्या औचित्य हो सकता है?

उल्लेखनीय है कि गाय या भैंस को चाहे आप शहद खिलाओ, दूध पिलाओ, प्रोटीन या शीरा दो, इन सबका रुमेन अथवा उदर में ही किण्वन होता है, जिसके बाद वसीय अम्ल बनेंगे। इसी तरह प्रोटीन चाहे फलीदार चारे का हो, खली आदि का हो या बादाम का हो, इसके अपघटन से अमोनिया ही मिलेगी, जो रुमेन में माइक्रोबियल प्रोटीन के निर्माण में काम आएगी। इसी तरह आप चाहे तेल दें या वसायुक्त कोई अन्य आहार, इनसे भी वसीय अम्लों का ही निर्माण होगा। इन्हें पशु अपनी ऊर्जा आवश्यकताओं के लिए अवशोषित कर लेते हैं। अब आप ही बताएं कि पशुओं को महंगे ड्राई फ्रूट जैसे-बादाम और काजू खिलाने से क्या लाभ है? इन्हें अंगूर और शहद देने से क्या हासिल होगा?

रोमंथी पशुओं का पाचन तंत्र इस प्रकार से नियोजित होता है कि ये कम गुणवत्ता के प्रोटीन खाकर भी बेहतर प्रोटीन का निर्माण करने में सक्षम होते हैं। यही कारण है कि पशुओं को यूरिया द्वारा उपचारित भूसा खिलाया जाता है ताकि रुमेन सूक्ष्मजीवी यूरिया नाइट्रोजन से प्रोटीन का निर्माण कर सकें। इसका यह अर्थ भी नहीं है कि इन्हें केवल यूरिया उपचारित भूसा ही खिलाया जाए। बाजार में प्रोटीन के अनेक सस्ते स्रोत उपलब्ध हैं, जिन्हें पशु आहार के रूप में उपयोग किया जा सकता है।

पशुओं को शीरे की असीमित मात्रा खाने की छूट नहीं देनी चाहिए। यह हानिकारक

आवरण पृष्ठ III पर जारी

कुछ पशुपालकों का मत है कि सांड को देसी घी खिलाने से वह ताकतवर होता है और उसकी प्रजनन क्षमता बेहतर होती है। कुछ पशुपालक अपने सांड को दूध और बादाम समेत कई मेवे खिलाने तक की बात करते हैं। रोमंथी पशु, आहार खाते समय, इसे अधिक समय तक अपने मुंह में नहीं रखते बल्कि जल्दी-जल्दी खाते हैं। पशुओं की स्वाद ग्रंथियां मनुष्यों की भांति अत्यधिक विकसित नहीं होतीं। अत: हमें पशुओं को ऐसे आहार खिलाने से बचना चाहिए जो हम स्वयं खा रहे हैं। कभी-कभी रसोई में बची हुई रोटी या हरी सब्जी के छिलके तो खिलाए जा सकते हैं, लेकिन पशुओं को दूध, शहद, बादाम, किशमिश, देसी घी आदि महंगी खाद्य सामग्री खिलाना समझदारी नहीं है। इनसे पशुओं को कोई नुकसान भले न हो, परन्तु इनसे कोई विशेष लाभ भी नहीं होता। इन खाध उत्पादों पर अधिक धन व्यय करके हम डेयरी के व्यवसाय में अधिक घाटा उठाते हैं।

भाकृअनुप
ICAR

खेती

कृषि विज्ञान द्वारा ग्रामोत्थान
की मासिक पत्रिका

वर्ष: 72, अंक: 4, अगस्त 2019

संपादन सलाहकार समिति

1. **डा. अशोक कुमार सिंह** — **अध्यक्ष**
   उप-महानिदेशक (कृषि विस्तार)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली
2. **डा. सतेन्द्र कुमार सिंह** — **सदस्य**
   परियोजना निदेशक
   भाकृअनुप-कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली
3. **डा. आर.सी. गौतम** — **सदस्य**
   पूर्व डीन
   भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
4. **डा. एस.के. सिंह** — **सदस्य**
   निदेशक
   भाकृअनुप-राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग
   नियोजन ब्यूरो, नागपुर
5. **डा. वाई.पी.एस. डबास** — **सदस्य**
   निदेशक (प्रसार)
   जी.बी. पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय
   पंतनगर
6. **श्री सेठपाल सिंह** — **सदस्य**
   प्रगतिशील किसान
7. **श्री सुरेन्द्र प्रसाद सिंह** — **सदस्य**
   कृषि पत्रकार
8. **श्री अशोक सिंह** — **सदस्य सचिव**
   प्रभारी, हिन्दी संपादकीय एकक

संपादक
अशोक सिंह
संपादन सहयोग
सुनीता अरोड़ा

प्रधान प्रोडक्शन अधिकारी
डा. वीरेन्द्र कुमार भारती
सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी
अशोक शास्त्री

लेआउट डिज़ाइन
डा. वीरेन्द्र कुमार भारती
अशोक शास्त्री

व्यवसाय सम्पर्क सूत्र
सुनील कुमार जोशी
व्यवसाय प्रबंधक
दूरभाष: 011-25843657
E-mail: bmicar@icar.org.in
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि अनुसंधान भवन, पूसा गेट, नई दिल्ली-12
एक प्रति: रु. 30.00 वार्षिक: रु. 300.00

E-mail: khetidipa@gmail.com

विषय-सूची

संपादकीय **कृषि में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, अशोक सिंह**

भू-स्वास्थ्य — 3
उपजाऊ मृदा के लिए वर्मीकम्पोस्ट
सुरेन्द्र सिंह तोमर और हेमा त्रिपाठी

पशु आहार — 7
चारा फसलों की उन्नत किस्में
मयूरी साहू और अजय तिवारी

कुक्कुट पालन — 12
समय की मांग है जैविक पोल्ट्री उत्पादन
बलविंदर सिंह ढिल्लो, ए.पी.एस. धालीवाल और जे.एस. बराड़

नई तकनीक — 15
संरक्षित खेती से मक्का की भरपूर पैदावार
जे. एस. मिश्र

जानकारी — 21
बीज अंकुरण की जांच
सुब्रता शर्मा, शिखा शर्मा और पूजा गोस्वामी

नवोन्मेष — 23
कृषि कार्यों में उपयोगी बैटरीचालित उपकरण
शिव प्रताप सिंह, मुकेश कुमार सिंह और उत्पल एक्का

दलहन — 27
चने की फसल का रोगों व कीटों से बचाव
विक्रांत, आर. आर. सिंह और गोविन्द विश्वकर्मा

जागरूकता — 31
शून्य जुताई विधि से गेहूं बुआई लागत में कमी
कमलेश मीना, रजनीश श्रीवास्तव, अनुराधा रंजन कुमारी, अजय तिवारी, अजय कुमार, नीरज सिंह, आर.एन. प्रसाद और बिजेन्द्र सिंह

मृदा प्रबंधन — 34
लवणग्रस्त मृदा में बाजरे की उन्नत खेती
बाबू लाल मीणा, रामेश्वर लाल मीणा, प्रवीण कुमार और अश्वनी कुमार

शोध — 38
पादप वृद्धि हार्मोन्स से बढ़ाएं गन्ने की पैदावार
रमाकान्त राय, पुष्पा सिंह, राजीव कुमार और अश्विनी दत्त पाठक

आहार — 41
खाद्य पदार्थों से विषाक्त तत्वों का निवारण
अलका जोशी, श्रुति सेठी, बिंदवी अरोरा, शालिनी गौड़ रूद्र, राम रोशन शर्मा और विद्या राम सागर

पशुपालन — 45
बकरी पालन को बनाएं, कमाई का जरिया
अर्पण उपाध्याय, रोहित गुप्ता, दीपक उपाध्याय, पुष्पराज शिवहरे और अतीक अहमद

कृषि कैलेण्डर — 53
अगस्त के मुख्य कृषि कार्य
राजीव कुमार सिंह, विनोद कुमार सिंह, कपिला शेखावत, प्रवीण कुमार उपाध्याय और एस.एस. राठौर

पशु पोषण — आवरण II और III
पशुओं के लिए सस्ते एवं सुलभ आहार
अश्विनी कुमार रॉय

डिस्क्लेमर

लेखों में व्यक्त विचारों, जानकारियों, आंकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं। उनसे भाकृअनुप की सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित लेखों तथा अन्य सामग्री का कॉपीराइट अधिकार भाकृअनुप-डीकेएमए के पास सुरक्षित है। इन्हें पुन: प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक की अनुमति अनिवार्य है। लेखों में संस्तुत रसायनों के डोज का प्रयोग करने से पहले विशेषज्ञों से सलाह अवश्य लें।

कृषि में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस या कृत्रिम बुद्धिमत्ता का कृषि क्षेत्र में जिस तेजी से प्रयोग बढ़ रहा है, वह सचमुच आश्चर्यजनक है। इस टेक्नोलॉजी की उपयोगिता से अनजान लोगों के लिए सचमुच यह एक नई जानकारी हो सकती है। विशेषज्ञों की राय में भारतीय कृषि में इस तकनीक का इस्तेमाल तो और भी महत्वपूर्ण कहा जा सकता है। इसके लिए कई तरह के तर्क दिए जाते हैं। इनमें कृषि क्षेत्र के समक्ष खड़ी तमाम चुनौतियों का नाम लिया जाता है, जिनका समाधान काफी हद तक आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस आधारित अत्याधुनिक तकनीकों से संभव है। इन चुनौतियों में सिंचाई जल दक्षता बढ़ाना, बढ़ते भूमि अपरदन की रोकथाम, फसल कटाई उपरान्त होने वाली हानि को कम करना आदि का खासतौर पर उल्लेख किया जा सकता है। इन समस्याओं से निबटने के लिए परंपरागत कृषि मानसिकता से बाहर निकलते हुए स्मार्ट कृषि को अपनाना पड़ेगा। इस क्रम में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस आधारित तकनीकों के व्यापक इस्तेमाल से निस्संदेह काफी तेज बदलाव देखने को मिल सकते हैं।

कृषि से जुड़ी तकनीकियों में सुधार की बात हो, कृषि आदानों की सटीक मात्रा का उपयोग करना हो या मशक्कत में कमी लाने की जरूरत हो, हर जगह आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस से जुड़ी तकनीकों की प्रभावी भूमिका देखी जा सकती है। आज किसान अपने मोबाइल ऐप की सहायता से मौसम की वर्तमान और भावी स्थितियों के बारे में समय रहते जानकारी हासिल कर न सिर्फ फसल हानि को कम कर सकते हैं बल्कि कृषि कार्यों से संबंधित उपयुक्त निर्णय भी आसानी से ले सकते हैं। इस प्रकार अधिक उपज प्राप्त कर कमाई बढ़ा सकते हैं।

केन्द्रीय जल आयोग की रिपोर्ट के अनुसार फिलहाल देश में सिंचाई जल की दक्षता मात्र 30 से 55 प्रतिशत ही है, यानी कि लगभग 45 से 70 प्रतिशत तक सिंचाई जल बर्बाद हो जाता है। अनुसंधानों से पता चला है कि आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) आधारित तकनीक के प्रयोग से इस बर्बादी को काफी हद तक रोक पाना संभव है। इस प्रकार आसानी से अंदाजा लगाया जा सकता है कि इस तकनीक से कितनी बड़ी मात्रा में सिंचाई जल की बचत की जा सकती है।

इसी तरह से बुआई और पौध प्रबंधन में एआई तकनीक की मदद से लागत में कमी के साथ पौध उत्पादकता को बढ़ा पाना संभव है। फसलों पर लगने वाले कीटों के प्रबंधन में एआई तकनीकों ने कमाल के परिणाम दर्शाए हैं। इस क्रम में ड्रोन का प्रयोग कर सटीक मात्रा में कीटनाशक का प्रयोग किया जा सकता है तथा किसानों के स्वास्थ्य को पहुंचने वाली हानि को न्यूनतम किया जा सकता है। फसल कटाई में रोबोटिक्स और कटाई उपरान्त होने वाले नुकसान को कम करने में भी ऑटोमेशन तकनीकें काफी कारगर हैं।

इतना ही नहीं एआई की सहायता से किसानों को मृदा गुणवत्ता, बुआई का सही समय, खरपतवारनाशियों का समय पर प्रयोग तथा कीट संक्रमण की अग्रिम जानकारियां उपलब्ध करवाई जा सकती हैं। इन तकनीकों द्वारा उपयुक्त फसलों एवं फसल पद्धतियों से संबंधित जानकारियां समय रहते मिल जाती हैं। इनका प्रयोग कर वे बिना किसी अतिरिक्त लागत के उत्पादन में बढ़ोतरी कर सकते हैं। इस क्रम में यह उल्लेख करना भी प्रासंगिक होगा कि भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा एआई तकनीक के इस्तेमाल से अब तक 117 मोबाइल ऐप्स विकसित किये गए हैं। इनमें 42 फसलों, 27 बागानी फसलों, 10 पशुचिकित्सा, 6 डेयरी, 1 पोल्ट्री, 3 फिशरीज, 17 प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन तथा 11 समन्वित कृषि पर आधारित ऐप्स शामिल हैं।

वैश्विक स्तर पर विकसित देशों के किसानों द्वारा खेती में ऐसी आधुनिक तकनीकों का बड़े पैमाने पर प्रयोग किया जा रहा है। हमारे देश में यह शुरुआती स्तर पर है, लेकिन सरकारी प्रयासों और जागरूकता अभियानों से किसान समुदाय के बीच इनके प्रसार बढ़ने की प्रबल संभावनाएं हैं।

(अशोक सिंह)

उपजाऊ मृदा के लिए वर्मीकम्पोस्ट

सुरेन्द्र सिंह तोमर[1] और **हेमा त्रिपाठी**[2]

"इस समय आवश्यकता है कि वैज्ञानिक एक ऐसी कार्य योजना पर कार्य करें, जिसमें पर्यावरण सहयोगी तकनीकियों का प्रयोग करके कृषि उत्पादन बढ़ाया जा सके। आज सिर्फ रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग करके उत्पादन में वृद्धि नहीं की जा सकती। लम्बे समय तक लगातार रासायनिक उर्वरकों के इस्तेमाल से उत्पादन, उत्पाद की गुणवत्ता तथा भूमि पर हानिकारक प्रभाव पड़ा है। दूसरी तरफ लगातार बढ़ती जनसंख्या की खाद्य आवश्यकताओं की पूर्ति पूर्णत: जैविक खेती से भी संभव नहीं है। अत: आज जरूरत इस बात की है कि उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ वातावरण तथा पर्यावरण के बीच सामंजस्य बनाया जाये। अधिकतम उत्पादन, लाभ तथा मृदा की उत्पादकता को लंबे समय तक स्थिर बनाये रखने के लिये एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन तकनीक का प्रयोग करना अनिवार्यता बन चुका है। इसमें कार्बनिक खादों, रासायनिक उर्वरकों, जैव उर्वरकों तथा उचित फसलचक्रों का समावेश दिया जाना चाहिए। इसके लिये हमें पुरानी कृषि पद्धति एवं आधुनिक कृषि प्रणाली को जोड़ते हुए एक नई दिशा की ओर अग्रसर होना पड़ेगा।"

जैविक खेती का दायरा काफी विस्तृत किया जा सकता है और समय के बदलते परिवेश में इसकी व्यापकता काफी अधिक बढ़ सकती है। एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन तकनीक को व्यापक रूप में लागू करने की आवश्यकता है। गोबर की खाद, कम्पोस्ट खाद, नाडेप, कृषि कम्पोस्ट, वर्मीकम्पोस्ट, वर्मीवाश, बायोडायनेमिक पद्धति, जैव उर्वरक (बायो-फर्टिलाइजर), विभिन्न खलियां, जैविक उत्पाद, गन्ने की मैली (प्रैसमड), स्पैंट वाश, फसल अवशेष, हरी खाद की फसलें, दलहनी फसलों का फसलचक्र में समावेश, रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग आदि को सम्मिलित कर इनकी उपलब्धता को बढ़ाया जा सकता है। उक्त संसाधनों के प्रयोग से मृदा में सभी आवश्यक पोषण तत्वों की विभिन्न फसलों के लिए उपलब्धता सुनिश्चित होगी, जिससे पोषक सुरक्षा सुदृढ़ होगी।

कृषि उत्पादन में उपयोगी केंचुए

वर्मीकम्पोस्ट के अवयव

वर्मीकम्पोस्ट में सामान्य मृदा की तुलना में 5 गुना नाइट्रोजन, 7 गुना फॉस्फोरस, 11 गुना पोटाश, 2 गुना कैल्शियम तथा मैग्नीशियम और 8 गुना एक्टिनोमाइसिटीज (उपयोगी जीवाणु) पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त इसमें विभिन्न पादप वृद्धि हार्मोन (ऑक्सिन, साइटोकाइनिन), एंजाइम्स (प्रोटियेज, लाइपेज, सेलुलोज आदि), विटामिन्स, मिनरल्स तथा एंटीबायोटिक्स भी पाये जाते हैं। ये पौधों के विकास तथा कार्बनिक पदार्थों के अपघटन के लिये उत्तरदायी होते हैं। इसके साथ ही वर्मीकम्पोस्ट में पैरीट्रोपिक झिल्ली होती है, जो चिपचिपी होने के कारण मृदाकणों से चिपक जाती है। यह मृदा से वाष्पीकरण की दर को कम कर देती है, जिससे मृदा में नमी की कमी नहीं होती है। यह शुष्क क्षेत्रों (बारानी) के लिये अधिक उपयोगी हो जाती है। गोबर की खाद की अपेक्षा इसमें 1.2 से 1.8 प्रतिशत अधिक नाइट्रोजन, 1.8-2.0 प्रतिशत अधिक फॉस्फोरस तथा 0.5 से 1.0 प्रतिशत अधिक पोटाश की मात्रा पायी जाती है। कृषि विज्ञान केन्द्र, भाकृअनुप-भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, इज्जतनगर फार्म पर तैयार की गई वर्मीकम्पोस्ट की पशु पोषण विभाग में करायी गयी जांच से ज्ञात हुआ है कि इसमें 2.4 प्रतिशत नाइट्रोजन एवं 1.7 प्रतिशत फॉस्फोरस उपस्थित था। इसका पी-एच मान कुछ अम्लीय पाया गया। अत: क्षारीय तथा ऊसर भूमि में इसका प्रयोग अधिक लाभदायक होगा।

केंचुए हैं किसानों के मित्र

केंचुए सदैव से किसानों के मित्र रहे हैं। सर्वप्रथम डार्विन ने कहा था कि केंचुए कुदरती हलवाहे होते हैं। ये भूमि को अन्दर ही अन्दर भुरभरा बनाते रहते हैं। उन्होंने केंचुओं को मृदा उर्वरता का बैरोमीटर भी कहा था। खेतों का उपजाऊपन, उसमें रहने वाले केंचुओं की संख्या पर निर्भर करता है। अत: आमतौर पर अधिक केंचुओं वाला खेत अधिक उपजाऊ होता है। एक स्वस्थ कृषि भूमि में एक वर्गफुट में 4-8 केंचुए मिल जाते हैं। एक केंचुआ प्रतिदिन 25-100 बार भूमि की परत में ऊपर-नीचे चलकर भूमि की सरन्ध्रता को बढ़ाता है। इसी प्रकार अरस्तू ने केंचुओं को भूमि की आंत का दर्जा दिया था। केंचुए निम्न रूप से मृदा की उर्वरता बढ़ाते हैं:

- ये मिट्टी तथा उसमें मिले कार्बनिक पदार्थों को खाकर मल के रूप में उपयोगी वर्मीकम्पोस्ट (वर्मीकास्ट) का उत्पादन करते हैं।
- ये भूमि में प्राकृतिक रूप से कर्षण

[1]अपर आयुक्त (फसलें), कमरा नं. 340 केन्द्रीय कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, कृषि भवन, नई दिल्ली; [2]प्रधान वैज्ञानिक एवं नोडल अधिकारी (एच.आर.डी.), भाकृअनुप-केन्द्रीय भैंस अनुसंधान संस्थान, हिसार (हरियाणा)

क्रिया करते रहते हैं, जिससे भूमि में वायु एवं जल संचार बढ़ जाता है। इससे जड़ों का विकास और पौधों की वृद्धि अच्छी होती है।

- केंचुए भूमि की जलशोषण एवं जलधारण क्षमता को बढ़ाते हैं।
- ये भूमि में उपस्थित सूक्ष्मजीवों की अच्छी बढ़वार को प्रोत्साहित कर भूमि के उपजाऊपन को बढ़ाते हैं।
- ये एंजाइम (प्रोटियेज, लाइपेज, सेलुलोज), विटामिन, वृद्धि हार्मोन, एंटीबायोटिक्स, एक्टिनोमाइसिटीज, प्रोटोजोआ आदि की संख्या तथा मात्रा को भी बढ़ाते हैं। इससे फसलों के उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ फसलों में कीटों तथा रोगों से लड़ने की क्षमता में भी वृद्धि होती है।

खेत को उपजाऊ बनाने में मददगार केंचुए

कैसे बनाएं वर्मीकम्पोस्ट

इसके लिये एक ऊंचे छायादार स्थान का चयन करते हैं। 90 सें.मी. से 1.0 मीटर चौड़ाई और आवश्यकतानुसार लम्बाई का ईंटों का ढांचा बनाते हैं। ढांचे की चौड़ाई एक मीटर से अधिक नहीं होनी चाहिये। छाया के लिये वृक्ष अथवा छप्पर आदि का प्रयोग किया जा सकता है। दोनों ओर ईंटों के 3-4 रद्दे लगाते हैं, ताकि ढांचे की गहराई 45 सें.मी. के आसपास रहे। इस गड्ढे अथवा ढांचे में नीचे ईंटों अथवा प्लास्टिक शीट को बिछाया जाता है, ताकि केंचुए नीचे मिट्टी की ओर न जायें। ढांचे को प्राय: ऊंचाई वाले स्थान पर बनाना चाहिये ताकि ढांचे में पानी इकट्ठा न हो सके। ढांचे में एक तरफ की ईंटों के सहारे लगभग 45 सें.मी. चौड़ाई एवं ऊंचाई में गोबर की तह लगाते हैं। इसके बाद 15-20 सें.मी. सूखी पत्तियों, घास, फसल अवशेष, सब्जी, फल तथा रसोई के अन्य अवशेषों की परत लगाकर पानी का छिड़काव ग्रीष्म ऋतु/मौसम में नियमित रूप से करते रहते हैं।

- कार्बनिक पदार्थ की सप्ताह में एक बार पलटाई दूसरी दीवार के सहारे करते रहना चाहिये।
- लगभग 40-50 दिनों में कार्बनिक पदार्थ एक मुलायम, स्पंजी, मीठी सुगंध वाले, गहरे भूरे रंग के वर्मीकम्पोस्ट में परिवर्तित हो जाते हैं। अब पानी का छिड़काव बन्द कर देना चाहिए।
- छिड़काव बन्द करने के 2-3 दिनों बाद वर्मीकम्पोस्ट का ढांचे में ही लम्बाई में दीवार की एक तरफ ढेर बना लें। ढांचे की दूसरी ओर फिर 15-20 दिनों पुराना कच्चा गोबर, बने हुए वर्मीकम्पोस्ट के साथ-साथ 40-45 सें.मी. ऊंचाई में

सारणी 1. वर्मीकम्पोस्ट की मात्रा का धान्य एवं अन्य फसलों में प्रयोग

1.	खेत की तैयारी के समय	2.5-3.0 टन/हैक्टर
2.	2-4 पत्ती की अवस्था पर खड़ी फसल में	1.2-1.5 टन/हैक्टर
3.	पुष्प अवस्था पर	1.2-1.5 टन/हैक्टर
4.	फलवृक्षों में प्रयोग	1-10 कि.ग्रा./वृक्ष आयु के अनुसार
5.	शाकभाजी वाली फसलों में प्रयोग	10-12 टन/हैक्टर
6.	गृहवाटिका में प्रयोग	500 ग्राम-1.0 कि.ग्रा./वर्गमीटर
7.	गमले में प्रयोग	50-250 ग्राम/गमला (गमले तथा पौधे के आकार के अनुसार)

सारणी 2. पांच गायों (संकर नस्ल) अथवा भैंसों की एक यूनिट से केंचुए की खाद तैयार करने का आय व व्यय का ब्यौरा

1	• एक यूनिट का प्रतिदिन का गोबर (25 कि.ग्रा./पशु) • 365 दिनों (एक वर्ष) का कुल गोबर (मात्रा)	25×5 =125 कि.ग्रा. 365×125 = 45625 कि.ग्रा.
2	• 365 दिनों (एक वर्ष) में वर्मीकम्पोस्ट बनाने के कुल लॉट • एक लॉट में गोबर की कुल मात्रा • 7604 कि.ग्रा. के लिए वर्मीकम्पोस्ट बनाने के लिए कुल जगह की आवश्यकता • दो बैड के बीच की दूरी 1.5 मीटर रखते हुए कुल क्षेत्रफल	06 लॉट (60 दिनों में एक लॉट) 7604 कि.ग्रा. प्रति लॉट 76 वर्ग मीटर अथवा 10 मीटर लम्बाई की 8 बैड कुल क्षेत्रफल की आवश्यकता = 200 वर्ग मीटर
3	• 10 मीटर लम्बे 8 बैड के लिए केंचुओं की कुल अनुमानित संख्या	अनुमानित 80 कि.ग्रा. (1 कि.ग्रा. प्रति क्विंटल गोबर)
4	• केंचुओं की खरीद 200 रुपये प्रति कि.ग्रा., की दर से 80 कि.ग्रा. केंचुओं की कुल राशि	16,000 रुपये
5	• कच्चे गोबर की अनुमानित खरीद दर 0.50 रुपये प्रति कि.ग्रा., कुल गोबर 45625 कि.ग्रा. की दर	अनुमानित 23,000 रुपये
6	• एक वर्ष में केंचुओं की कुल संख्या (80,000 केंचुओं के मरने के बाद कम से कम 25000-30,000 जोड़े सुरक्षित जिनकी वृद्धि दर कम से कम 10 गुना होगी • 250-300 कि.ग्रा. केंचुए 200 रुपये प्रति कि.ग्रा. की दर से	अनुमानित 2,50,000-3,00,000 संख्या अथवा 250-300 कि.ग्रा. औसत 55,000 रुपये
7	• 45625 कि.ग्रा. कच्चे गोबर से प्राप्त वर्मीकम्पोस्ट की कुल मात्रा एक वर्ष में	14,000 कि.ग्रा. अथवा 140 क्विंटल 800-1000 रुपये प्रति क्विंटल की दर से कुल औसत 1,26,000 रुपये
8	• एक वर्ष की कुल आय 55,000 रुपये + 1,26,000 रुपये = 1,81,000 रुपये व कुल व्यय 16,000 रुपये + 23,000 रुपये = 39,000 रुपये	प्रथम वर्ष की कुल आय 1,81,000-39,000= 1,42,000 रुपये

क्या है वर्मीकम्पोस्ट

केंचुओं द्वारा कार्बनिक पदार्थ के विघटन के फलस्वरूप तैयार उत्पाद को ह्यूमस की संज्ञा दी जा सकती है, जिसका पुन: विघटन न हो सके, उस पदार्थ को वर्मीकम्पोस्ट कहते हैं। केंचुए कार्बनिक पदार्थ को खाते हैं। यह कार्बनिक पदार्थ केंचुओं के पाचनतंत्र से होता हुआ जटिल जैव रासायनिक प्रक्रियाओं से गुजरता है। एक महक वाली सूक्ष्म गोलिकाओं के रूप में बाहर जो पदार्थ निकलकर आता है, वह वर्मीकास्ट कहलाता है। अर्थात साधारण भाषा में केंचुए की विष्ठा (कॉस्टिंग/मल) को ही वर्मीकम्पोस्ट कहते हैं। यह रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता तथा उनके अधिक उपयोग को घटाने का एक बेहतरीन विकल्प है। साथ ही कस्बों, गांवों तथा शहरों में जैविक रूप से विघटित हो सकने वाले कार्बनिक कचरे के निपटारे का यह एक उत्तम उपाय है। इसे वैज्ञानिक प्रबंधन द्वारा अच्छी गुणवत्ता वाली कम्पोस्ट खाद में परिवर्तित किया जा सकता है। केंचुओं द्वारा वर्मीकम्पोस्ट बनाने की इस प्रक्रिया को ही वर्मीकम्पोस्टिंग कहते हैं।

जैविक खेती में केंचुए का अहम् योगदान

डाल दें। इस गोबर में केंचुए स्वयं ही तैयार वर्मीकम्पोस्ट के ढेर से निकल कर चले जाते हैं और यह प्रक्रिया लगातार चलती रहेगी। ध्यान रखें कि वर्मीकम्पोस्ट को ढेर से निकालने से पहले उसमें पानी का छिड़काव करना बन्द कर दें और वर्मीकम्पोस्ट को ढांचे से बाहर निकालकर ढेर को शंक्वाकार बना लें। इससे ऊपर की सतह पर नमी कम होते ही केंचुए स्वयं नीचे की सतह में चले जाते हैं। इस प्रकार ऊपर की सूखी/कम नमीयुक्त कम्पोस्ट अलग करके छलनी से छान ली जाती है।

- संपूर्ण पदार्थों जैसे-गोबर, कूड़ा-करकट, फल एवं सब्जियों के अवशेष आदि को वर्मीकम्पोस्ट बनाने में 50-60 दिनों का समय लगता है। सर्दियों में यह समय कुछ बढ़ भी सकता है। वर्मीकम्पोस्ट बनने में लगने वाला समय कार्बनिक पदार्थों की प्रकृति पर भी निर्भर करता है। शुष्क कार्बनिक पदार्थ ज्यादा होने पर समय अधिक लगेगा। केवल गोबर की खाद का प्रयोग करने पर वर्मीकम्पोस्ट 45-50 दिनों में ही तैयार हो जाता है। वैज्ञानिक शोधों से ज्ञात हुआ है कि एक कि.ग्रा. रेडवर्म (आइसेनिया फोटिडा) से प्रतिदिन एक कि.ग्रा. वर्मीकम्पोस्ट तैयार हो जाती है।
- अब शुष्क वर्मीकम्पोस्ट को छायादार स्थान पर एकत्र करके इसे 2 मि.मी. की छलनी से छानकर बोरों में भर लें। बचे हुये केंचुओं, उनके शिशु केंचुए तथा अंडों को कच्चे गोबर के ढेर में डाल दें, जिससे वर्मीकम्पोस्ट बनाने का क्रम निरन्तर जारी रहे।
- इसे बोरों में भरकर पॉलीथीन में पैक करके ठंडे छायादार स्थान पर रखें, जिससे इसमें 20-25 प्रतिशत नमी बनी रहे। अब 10 दिनों के उपरान्त इस वर्मीकम्पोस्ट को दोबारा भी छलनी से छान सकते हैं, ताकि जो वर्म अंडे से शिशु बन गये हैं, वे भी निकाले जा सकते हैं। इस तैयार वर्मीकम्पोस्ट में जैव उर्वरकों एवं जैव फफूंदनाशकों का प्रयोग भी किया जा सकता है, जिससे यह और अधिक पोषक तत्वयुक्त होगा।

शोधों द्वारा ज्ञात हुआ है कि फसल उत्पादन में वर्मीकम्पोस्ट के प्रयोग से 1.25 गुना से अधिक तथा गुलाब बागवानी की पैदावार में चार गुना तक वृद्धि हुई है।

खेतों में केंचुओं की संख्या बढ़ाना

जैविक खेती तथा समेकित नाशीजीव प्रबंधन के सिद्धांतों को अपनाकर तथा प्रारंभ के कुछ वर्षों में वर्मीकम्पोस्ट का प्रयोग करने के बाद खेतों में स्वयं ही केंचुओं की संख्या भी इतनी बढ़ जाती है कि उसके बाद रासायनिक उर्वरकों को देने की आवश्यकता बहुत ही कम हो जाती है। खेत में उपस्थित केंचुए कार्बनिक पदार्थों का विघटन तेजी से करने लगेंगे। अत: खेतों में कार्बनिक पदार्थ डालते रहने के साथ ही केंचुओं की संख्या बढ़ाते रहने के लिये निम्न बातों को ध्यान में रखने की आवश्यकता है:

- रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग संतुलित मात्रा में एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन (आईएनएम) के माध्यम से किया जाये।
- मृदा कीटों तथा भूमि उपचार के लिये अधिकतर रसायनों के प्रयोग से बचना चाहिये। अत: समेकित नाशीजीव प्रबंधन का प्रयोग करें। यदि अति

क्या है वर्मीवाश

वर्मीकम्पोस्ट से वर्मीवाश बनाने की अनेक प्रक्रियायें अपनायी जाती हैं। वर्मीवाश बनाने के लिये लोहे या प्लास्टिक का ड्रम या बड़ी बाल्टी, नांद, गमले, टंकी आदि का उपयोग किया जाता है यह ऊपर से खुला होता है। इसकी तली के पास में एक इंच व्यास का एक छेद करके एक टोंटी लगा दी जाती है। ड्रम की तली में 15-20 सें.मी. ईंट या पत्थर की गिट्टी बिछा देते हैं। इसके ऊपर 15-20 सें.मी. बालू या मौरंग बिछाते हैं। बालू के ऊपर 25-30 सें.मी. मोटी दोमट मिट्टी की तह बिछाते हैं। आवश्यकतानुसार वर्मीकम्पोस्ट व केंचुओं की परत बिछा दी जाती है। साथ ही केंचुए के खाने के लिए कच्चे गोबर की एक परत बिछा दी जाती है। प्रत्येक तह बिछाने के बाद ऊपर से आवश्यकतानुसार पानी डालते रहते हैं तथा नीचे टोंटी खुली रखते हैं। उक्त वर्मीकम्पोस्ट एवं केंचुओं के बिछावन को नियमित रूप से आवश्यकतानुसार बदलते रहते हैं।

रासायनिक उर्वरकों की खपत को कम करने में सहायक केंचुए

वर्मीकम्पोस्ट के लाभ

- यह पेड़-पौधों, फलदार वृक्षों, सब्जियों एवं सभी प्रकार की फसलों के लिये एक सम्पूर्ण एवं संतुलित आहार है।
- वर्मीकम्पोस्ट पेड़-पौधों की सेहत एवं उनकी वृद्धि में सहायक है, जिससे अच्छा उत्पादन प्राप्त होता है। यह खरपतवारों, कीटों एवं रोगों पर होने वाले खर्च में भी कमी लाता है।
- इसके प्रयोग से भूमि की जलशोषण तथा जलधारण क्षमता बढ़ती है। भूमि की भौतिक दशा में सुधार आने से उसमें रासायनिक एवं जैविक प्रक्रियायें तेजी से होने लगती हैं।
- वर्मीकम्पोस्ट के प्रयोग से बहुत सारे कार्बनिक कचरे से मुक्ति मिल सकती है, जो वर्तमान में पर्यावरण को प्रदूषित कर रहा है। इससे मानव स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभाव से बचाव के साथ-साथ आर्थिक बचत भी होगी। पॉलीथीन बैग, लोहा व कांच को छोड़कर केंचुए समस्त कार्बनिक कचरे को खाद बना देते हैं।
- ये मृदा सूक्ष्मजीवों तथा पर्यावरण को किसी तरह की हानि नहीं पहुंचाते हैं, बल्कि केंचुओं से मृदा सूक्ष्मजीवों की संख्या बढ़ने के साथ-साथ उनकी कार्यक्षमता बढ़ती है और पर्यावरण सुरक्षित होता है।
- शहर के आसपास रहने वाले ग्रामीण युवाओं तथा महिलाओं के लिये यह आय का स्रोत बन सकता है। वर्मीकम्पोस्ट के साथ जैव-उर्वरकों एवं जैव-फफूंद का खेतों में प्रयोग भी बहुत आसान होता है।

केंचुआ

केंचुआ एनिलिडा वर्ग का रात्रिचर जीव है। अत: यह अंधेरे व रात्रि में अधिक क्रियाशील रहता है। यह तापमान के अनुसार बरसात में 30-50 सें.मी. गहराई पर तथा सर्दियों में 100 से 130 सें.मी. गहराई तक भूमि में रहता है। साधारणतया यह 10 वर्षों तक जीवित रहता है। इसकी प्रजनन क्षमता 2 से 2.5 वर्ष तक ही रहती है। 6 माह बाद इससे कोकून प्राप्त होने लगता है। एक कोकून से 2-3 सप्ताह में एक वयस्क बाहर निकलता है। 6 माह में एक जोड़े केंचुए से लगभग 100 कोकून प्राप्त किये जा सकते हैं। ये धनिया के बीज के आकार के 3-4 मि.मी. लम्बे, 3-10 मि.ग्रा. वजन के प्रारंभ में सफेद तथा बाद में भूरे कत्थई रंग के हो जाते हैं। इन 800 से 1000 केंचुओं का वजन लगभग एक कि.ग्रा. तथा कीमत लगभग 200 से 300 रुपये प्रति कि.ग्रा. या प्रति एक हजार केंचुए होती है। अच्छी वर्मीकम्पोस्ट बनाने के लिये लगभग 25-30^0 सेल्सियस तापमान उपयुक्त होता है। साधारणत: एक केंचुआ अपने वजन के बराबर कार्बनिक पदार्थ प्रतिदिन खाता है। यह 25 सें.मी. प्रति मिनट की गति से चलता है।

आवश्यक हो तो सुरक्षित रसायनों (चौथी पीढ़ी के कीटनाशक) का ही प्रयोग किया जाये।

- विभिन्न फसलचक्रों को अपनाएं तथा दलहनी फसलों का उनमें समावेश अवश्य करें।
- भूमि को अम्लीय और अधिक क्षारीय होने से बचायें।
- कार्बनिक पदार्थों अथवा फसल अवशेषों का प्रयोग नियमित रूप से करते रहें। फसल अवशेषों को खेतों में बिल्कुल न जलायें बल्कि खेतों में ही उनके निपटान का कार्य करें।
- पहाड़ी, आदिवासी एवं बारानी (शुष्क) क्षेत्रों में वर्मीकम्पोस्ट अपनाने से जैविक खेती को बढ़ावा मिलेगा। इन क्षेत्रों में पैदा होने वाली फसलों जैसे-दलहन, तिलहन एवं मोटे अनाज/न्यूट्री अनाज की पैदावार बढ़ेगी। पोषण सुरक्षा, जलवायु परिवर्तन संबंधित समस्याएं स्वत: ही समाप्त हो जाएंगी। कृषकों को जैविक उत्पाद से अधिक मूल्य मिलने से प्रति इकाई क्षेत्र मुनाफा बढ़ेगा। इसके साथ ही ऐसे क्षेत्रों में जैविक खेती को बढ़ावा मिलेगा और गरीब किसानों के जीवनस्तर में सुधार होगा।

एक लीटर वर्मीवाश में 7 लीटर पानी मिलाकर प्रात: या सायंकाल इसका पौधों पर छिड़काव करना चाहिये। कुछ अन्य प्रयोगों में वर्मीवाश और गौमूत्र के मिश्रण को दस गुना पानी में मिलाकर पर्णीय छिड़काव करने से इसमें तरल खाद के साथ-साथ कीटनाशक गुणों का प्रभाव भी देखा गया है।

उपरोक्त प्रौद्योगिकी को किसान एवं नौजवान अपनी खेती को टिकाऊ बनाने व स्वरोजगार के लिये अपना सकते हैं। इससे जहां एक ओर ग्रामीण युवाओं को रोजगार मिलेगा, वहीं शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में फैले कार्बनिक कचरे का वर्मीकम्पोस्ट के रूप में एक बेहतरीन विकल्प के तौर पर इस्तेमाल हो जायेगा। इससे हमारा पर्यावरण तो स्वच्छ होगा ही साथ में मृदा, जल, मानव, पशु, पक्षियों के स्वास्थ्य में भी सुधार होगा। भविष्य में केंचुओं से एक सुलभ एवं सस्ती प्रोटीन मानव, पशु एवं कुक्कुट आहार के लिए प्राप्त की जाने की संभावनाओं को देखते हुए इसका भविष्य अति उज्ज्वल है। भैंसों अथवा गायों की एक यूनिट (5 संख्या) से वर्मीकम्पोस्ट बनाने पर खर्च एवं उससे होने वाली आय आदि का विवरण सारणी-2 में दर्शाया गया है। ■

चारा फसलों की उन्नत किस्में

मयूरी साहू और **अजय तिवारी**
पौध प्रजनन एवं आनुवंशिकी विभाग
इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर-492012 (छत्तीसगढ़)

"हमारे देश में पशुओं के लिए आवश्यक पौष्टिक आहार की वर्तमान में बहुत कमी है। दसवीं योजना में हरे चारे की 60 प्रतिशत तथा सूखे चारे की 22 प्रतिशत कमी आंकी गई है। देश की कुल जोत के लगभग 4 प्रतिशत क्षेत्रफल में ही चारा उगाया जाता है, जबकि वर्तमान में कुल भू जोत के 12 से 16 प्रतिशत क्षेत्रफल में चारा उगाने की आवश्यकता है। हमारे पास संसाधन सीमित हैं किन्तु इन्हीं सीमित संसाधनों में ही पशुओं को भरपेट गुणवत्तायुक्त पौष्टिक चारा उपलब्ध करवाने में आने वाली कठिनाइयों का समाधान खोजना है। पशुधन की संख्या निरंतर बढ़ती जा रही है, जबकि चरागाह की भूमि सिमटती जा रही है। पशुधन को खिलाये जाने वाले आहार का मुख्य घटक सूखा चारा है, जो कम पौष्टिक होता है। पोषक तत्वों की पूर्ति के लिए दाना, मिश्रण पूरक के रूप में दिया जाता है, जिससे पशुपालन महंगा पड़ता है। पशुओं के लिए सस्ता, संतुलित, स्वास्थ्यवर्धक एवं व्यावहारिक आहार हरा चारा ही है।"

रबी की चारा फसलों को अक्टूबर के प्रथम सप्ताह में लगाना उचित होता है। इससे कटाई की संख्या बढ़ जाती है। इसके लिए खरीफ की फसलों की कटाई करें और नमी होने पर खेत को तैयार कर लें। जिन किसानों के पास पानी के साधन उपलब्ध हैं, वे जई, बरसीम, लूसर्न एवं तिवड़ा आदि की बुआई कर सकते हैं।

रबी चारा वाली फसलों की बुआई के लिए विभिन्न साधनों द्वारा भूमि की सतह में नमी का संरक्षण अवश्य करें। खेत में आखिरी बार रोटावेटर चलाकर बुआई करें। बुआई से पहले उन्नत किस्मों, रोग एवं कीटरोधिता संबंधित जानकारियां प्राप्त करनी चाहिए। बीज की खरीद सरकारी संस्थानों या प्रमाणित संस्थानों से करनी चाहिए। चारे की पूर्ति एवं मांग के अंतर को कम करने के लिए वृहद चारा उत्पादन ही एकमात्र उपाय है। इसकी सफलता में सबसे महत्वपूर्ण कारक, अधिक उत्पादन देने वाली उन्नत किस्मों के शुद्ध बीजों का उपयोग करना और चारा उत्पादन की उन्नत खेती है।

बरसीम की उन्नत किस्में

जवाहर बरसीम-1

पौधा सीधा खड़ा होता है और ऊंचाई 47 सें.मी. होती है। पूर्ण विकसित होने पर पुष्पन के समय बेलनाकार एवं लम्बे आकार का होता है। इसमें पत्ती एवं तना अनुपात 1.61 होता है। पौधों का जैसे-जैसे विकास होता है उसी अंतराल में कटाई करते रहना चाहिए।

सारणी 1. हरे चारे के लिए विभिन्न फसलें

फसल का नाम	बुआई का समय	बीज दर (कि.ग्रा./हैक्टर)	पौधे से पौधे के बीच का अंतराल	उर्वरक की आवश्यक मात्रा (कि.ग्रा./हैक्टर)	सिंचाई का अंतराल/ संख्या	कटाई	हरा चारा उत्पादन (टन/हैक्टर)	बीज उत्पादन (टन/हैक्टर)
जई	अक्टूबर से नवम्बर अंत तक	60-70	20-25 सें.मी.	• 20-25 टन गोबर खाद • नाइट्रोजन-80-120, पोटाश-40 (कि.ग्रा./हैक्टर) • प्रथम एवं द्वितीय कटाई के बाद फसल में नाइट्रोजन 40 कि.ग्रा./हैक्टर का छिड़काव करें।	• 4-5 सिंचाई • प्रथम सिंचाई-बुआई के 21 दिनों बाद • द्वितीय सिंचाई-बुआई के 45 दिनों बाद • तृतीय सिंचाई-बुआई के 60 दिनों बाद • चतुर्थ सिंचाई-बुआई के 80 दिनों बाद	• 50 प्रतिशत फूल आने की अवस्था में बुआई के 50-55 दिनों बाद कटाई करें। • दो कटाई में, बुआई के 60 दिनों बाद एवं दोबारा कटाई 50 प्रतिशत फूल आने के बाद करें।	40-45 (एकल कटाई) 50-55 (बहु कटाई)	2-2.5
बरसीम	• अक्टूबर-नवम्बर • बुआई गीली या सूखी विधि से • कासानी नमक उपचार • राइजोबियम कल्चर उपचार	• 25 कि.ग्रा./हैक्टर समय से बुआई पर • 35 कि.ग्रा. ज्यादा या देरी से बुआई पर	• 20 से 25 सें.मी.	• नाइट्रोजन-20, फॉस्फोरस-80, पोटाश-40 (कि.ग्रा./हैक्टर)	• प्रथम दो हल्की सिंचाई 5-6 दिनों के अंतराल पर • उसके पश्चात अक्टूबर में 10 दिनों के अंतराल पर • नवम्बर में 12-15 दिनों के अंतराल पर • फरवरी-मार्च में 10-12 दिनों के अंतराल पर • अप्रैल-मार्च में 8-10 दिनों के अंतराल पर • सामान्यत: प्रत्येक कटाई के बाद सिंचाई	• प्रथम कटाई 50-55 दिनों के बाद • उसके पश्चात 30-35 दिनों पर	100-120	0.8 से 1.0
लूसर्न (रिजका)	• मध्य अक्टूबर से शुरुआती नवम्बर • बसन्त ऋतु में मार्च में बुआई	• छिड़काव विधि	• 20 सें.मी.	• नाइट्रोजन-20, फॉस्फोरस-100, पोटाश-40 (कि.ग्रा./हैक्टर) • मॉलिब्डेनम एवं बोरॉन	• अच्छे अंकुरण के लिये प्रारंभिक अवस्था में, बुआई के एक सप्ताह बाद, शीत ऋतु में 15-20 दिनों के बाद, बसन्त एवं ग्रीष्म ऋतु में 10-12 दिनों पर	75-80 दिनों पर	10-12	
तिवड़ा (खेसरी)	अक्टूबर के द्वितीय सप्ताह से नवम्बर के प्रथम सप्ताह तक करनी चाहिए	60-70 कि.ग्रा. बीज/हैक्टर रखना चाहिए	• पौधे से पौधे एवं बीज का अंतराल-30 सें.मी.	• उर्वरक की मात्रा-उर्वरक की आवश्यक मात्रा कि.ग्रा./हैक्टर 19:19:19 (एन.पी. के.) अनुपात में डालनी चाहिए	सिंचाई का अंतराल-पहली सिंचाई 50-60 दिनों में करनी चाहिए। मौसम शुष्क रहने पर खेत की अवस्था देखकर सिंचाई करनी चाहिए।	तिवड़ा की उन्नत खेती के लिए 50 प्रतिशत पुष्पन अवस्था में ऊपरी हिस्से की कटाई करनी चाहिए।	1.3-1.5	1.5-1.9 भूसा

जई

इससे हरा चारा 7600 क्विंटल/हैक्टर, सूखा चारा 155 क्विंटल/हैक्टर एवं बीज की उपज 3.0 क्विंटल/हैक्टर प्राप्त होती है।

बुन्देल बरसीम-3 (जी.एच.)

इसके पौधे सीधे खड़े होते हैं एवं तेजी से वृद्धि करते हैं। पत्तियां गहरे हरे रंग की होती हैं एवं इनमें छोटे-छोटे बाल होते हैं। फूल सफेद रंग के होते हैं। 50 प्रतिशत पुष्पन 155-170 दिनों में एवं पूर्ण परिपक्वता 175 से 185 दिनों में होती है। 65-80 बीज एक बाली में होते हैं। बीज पीले रंग का होता है एवं 1000 बीजों का वजन 3.3 ग्राम होता है। यह तना सड़न, जड़ सड़न एवं पाउडरी मिल्ड्यू के प्रति सहनशील है। कार्यिकी लक्षणों में यह किस्म द्विगुणित किस्मों से अलग होती है। इससे हरा चारा उपज 560 क्विंटल/हैक्टर एवं सूखा चारा उपज 90 क्विंटल/हैक्टर प्राप्त होती है।

बी.एल.-22

इसके पौधे लम्बे होते हैं और पौधों की ऊंचाई 55 सें.मी. होती है। यह किस्म बहुकटाई के लिए बेहद उपयुक्त है। एक बार कटाई करने के बाद दोबारा वृद्धि बहुत जल्दी होती है। यह किस्म अंत तक हरी बनी रहती है। पूर्ण परिपक्वता 220-230 दिनों में होती है। बीज छोटे आकार के होते हैं। 1000 बीजों का भार 2.3 से 2.4 ग्राम तक होता है। हरा चारा उपज 520 क्विंटल/हैक्टर एवं सूखा चारा उपज 123 क्विंटल/हैक्टर प्राप्त होती है। यदि बीज उत्पादन के लिए इसकी खेती करते हैं, तो 3.5 क्विंटल/हैक्टर बीज प्राप्त होते हैं।

बुन्देल बरसीम-2 (जी.एच.बी.-146)

इसके पौधे सीधे और ऊंचाई 55-60 सें.मी. तक होती है। फूलों का रंग सफेद होता है। 50 प्रतिशत पुष्पन 150-160 दिनों में होता है। पूर्ण परिपक्वता 180-190 दिनों में होती है। पत्ती-तना अनुपात 0.68 होता है। एक बाली में 80-90 बीजों की संख्या होती है। बीजों का आकार गोल एवं रंग हल्का पीला होता है। 1000 बीजों का भार 2.39 ग्राम होता है। यह तना सड़न, जड़ सड़न रोगों एवं अन्य प्रमुख कीटों के प्रति सहनशील है। इस किस्म की मुख्य विशेषता है कि चारे के रूप में इसका पशुओं में पाचन अच्छा होता है। हरा चारा उपज 790 क्विंटल/हैक्टर, सूखा चारा उपज 110 क्विंटल/हैक्टर और बीज की मात्रा 4 क्विंटल/हैक्टर प्राप्त होती है।

वरदान (एस. 99-2)

पौधे सीधे और ऊंचाई 45-70 सें.मी. होती है। पौधा हमेशा गहरे हरे रंग का होता है। पत्तियों का आकार अंडाकार होता है। फूलों का रंग सफेद होता है। पूर्ण परिपक्वता 175 से 190 दिनों में होती है। एक बाली में बीजों की मात्रा 80-90 होती है। बीज अंडाकार एवं पीले रंग का होता है। 1,000 बीजों का भार 2.4 ग्राम होता है। इसके पुष्प सुपाच्य होते हैं। बैक्टीरिया, विल्ट एवं अन्य रोगों के प्रति यह सहनशील है। हरा चारा उपज 726 क्विंटल/हैक्टर एवं सूखा चारा उपज 139 क्विंटल/हैक्टर प्राप्त होती है।

चारे का उच्च उत्पादन

पोषण से भरपूर चारा फसल

मस्कावी

पत्तियां छोटे आकार की, लम्बी और सिरा गोलाकार होता है, जिनमें छोटे-छोटे बाल होते हैं (विशेष रूप से पत्तियों की ऊपरी सतह में, फूलों का रंग सफेद और बीज अंडाकार पीले रंग का होता है। 1000 बीजों का वजन 2.67 ग्राम होता है। यह किस्म बहुकटाई के लिए उपयुक्त है एवं वृद्धि बहुत जल्दी होती है। हरा चारा उपज 650 क्विंटल/हैक्टर एवं सूखा चारा उपज 125 क्विंटल/हैक्टर प्राप्त होती है।

लूसर्न की उन्नत किस्में

जे.बी.-5

इस किस्म के पौधे शुरुआत में झुके हुए फैलावदार होते हैं, लेकिन बाद की अवस्था में सीधे खड़े रहते हैं। फूलों का रंग सफेद होता है एवं 50 प्रतिशत पुष्पन 150-160 दिनों में होता है। पूर्ण परिपक्वता 185-195 दिनों में होती है। इसके चारे में क्रूड प्रोटीन 18-20 प्रतिशत होता है। यह किस्म तना सड़न रोग के प्रति सहनशील है। देरी से कटाई के लिए यह उपयुक्त है। हरा चारा उपज 580 क्विंटल/हैक्टर, सूखा चारा उपज 130 क्विंटल/हैक्टर और बीज उपज 6.5 क्विंटल/हैक्टर प्राप्त होती है।

आनंद लूसर्न (ए.एल.-3)

इस किस्म के पौधे की ऊंचाई 70 सें.मी. होती है। इसकी खेती वर्षभर (सभी ऋतुओं) कर सकते हैं। यह आर.एल. -88 एवं आनंद-2 की अपेक्षा अधिक वृद्धि करने वाली किस्म है। पत्तियां गहरे हरे रंग की लम्बाकार होती हैं। पत्ती तना अनुपात 1.78 होता है। शुष्क पदार्थ की मात्रा 25.42 प्रतिशत एवं क्रूड प्रोटीन की मात्रा 23.25 प्रतिशत होती है। पहली कटाई, बुआई के 55 से 60 दिनों में कर सकते हैं। अन्य कटाइयां 25-30 दिनों के अंतराल से करते रहना चाहिए। हरा चारा उपज 970 क्विंटल/हैक्टर प्रतिवर्ष एवं शुष्क चारा उपज 180 क्विंटल/हैक्टर प्रतिवर्ष प्राप्त होती है। बीज उपज 3.0 क्विंटल/हैक्टर होती है।

आनन्द लूसर्न

सारणी 2. रबी की चारा फसलों की किस्में एवं उनकी विशेषताएं

क्र.सं.	किस्म	विशिष्ट लक्षण एवं विशेषताएं
जई की उन्नत किस्में		
1	केन्ट जई	इसकी ऊंचाई 100-115 सें.मी. होती है। पत्तियां मध्यम आकार और गहरे हरे रंग की होती हैं। इसकी बालियां 17-34 सें.मी. लम्बी होती हैं। पत्ती-तना अनुपात 1: 20 होता है। यह 125 से 130 दिनों में परिपक्व होती है। बीजों का आकार बड़ा तथा 1000 बीजों का वजन 51.3 ग्राम होता है। यह किस्म जमीन पर नहीं गिरती है। इसके बीज टूटते/झड़ते नहीं हैं। हरा चारा उपज 450 क्विंटल/हैक्टर दो कटाई में प्राप्त होती है। सूखा चारा उपज 130 क्विंटल/हैक्टर प्राप्त होती है।
2	बुन्देल जई-622	इसके पौधे सीधे खड़े रहते हैं। 50 प्रतिशत पुष्पन 95 से 160 दिनों में होता है। परिपक्वता 125-130 दिनों में होती है। बीज मध्यम बड़े आकार का होता है। इससे मुख्यत: 3-4 कटाइयां आसानी से प्राप्त कर सकते हैं। इससे हरा चारा उपज 370 क्विंटल/हैक्टर एवं सूखा चारा उपज 95 क्विंटल/हैक्टर प्राप्त होती है।
3	बुन्देल जई-851	इस किस्म के पौधे पहले फैलावदार और बाद की अवस्था में सीधे खड़े होते हैं। पत्तियां संकरी एवं गहरे हरे रंग की होती हैं। इसमें 122 से 125 दिनों में 50 प्रतिशत पुष्पन होता है, जबकि पूर्ण परिपक्वता 155 से 160 दिनों में होती है। बीज लम्बे संकीर्ण आकार के होते हैं। इसमें 10-12 प्रतिशत क्रूड प्रोटीन पाया जाता है। यह पत्ती सिकुड़न और शीर्ष झुलसा के प्रति सहनशील है। इसको बरसीम के साथ अंतर्वर्ती फसल के रूप में ले सकते हैं। हरा चारा उपज 525 क्विंटल/हैक्टर एवं सूखा चारा उपज 82 क्विंटल/हैक्टर प्राप्त होती है।
4	जवाहर जई 03-91	पौधे की लम्बाई 120-130 सें.मी. होती है। पौधे सीधे खड़े होते हैं एवं इसकी पत्तियां गहरे हरे रंग की होती हैं। इसमें 8-13 कंसों की संख्या प्रति पौधा होती है। यह मुख्य रूप से पत्ती सिकुड़न, स्क्लेरोटियम रूटरॉट सेट, पाउडरी मिल्ड्यू एवं नेमेटोड प्रतिरोधी है।
5	ओ.एस.-6	इसके पौधे सीधे खड़े रहते हैं। पौधे की ऊंचाई 109 सें.मी. होती है। इसके पौधे शुरुआत से ही अच्छा विकास करते हैं। तना, पीला हरे रंग का एवं पत्तियां गहरे हरे रंग की होती हैं। बालियों के विकास के समय ऊपरी पत्ती झंडा स्वरूप खड़ी रहती है। इसकी परिपक्वता 140-150 दिनों में हो जाती है। सभी मुख्य रोगों एवं कीटों के प्रति सहनशील है। यह किस्म एकल कट एवं डबल कट के लिए उपयुक्त है। इसके अच्छे परिणाम के लिए एकल कट बेहतर प्रदर्शन करती है। हरा चारा उपज 526 क्विंटल/हैक्टर एवं सूखा चारा उपज 105 क्विंटल/हैक्टर एकल कट से प्राप्त होती है।
6	फुले हरिता (आर.ओ.-19)	पौधा सीधा खड़ा एवं 100 से 110 सें.मी. लम्बा होता है। तने की मोटाई 2-3 सें.मी. एवं रसदार होती है। पत्तियां गहरे हरे रंग की एवं चौड़ी होती हैं। पत्तियों का रंग 50 प्रतिशत पुष्पन तक हरे रंग का होता है। प्रथम कटाई 55 से 60 दिनों एवं दूसरी कटाई 35 दिनों के बाद करते हैं। पूर्ण परिपक्वता 125 से 130 दिनों में होती है। इसमें क्रूड प्रोटीन की अच्छी मात्रा पाई जाती है एवं क्रूड फाइबर की मात्रा कम होती है। यह चित्तीदार धब्बों के प्रति सहनशील है। इससे हरा चारा उपज 600 क्विंटल/हैक्टर, सूखा चारा उपज 120 क्विंटल/हैक्टर एवं बीज उपज 11.5 क्विंटल/हैक्टर प्राप्त होती है।
7	बुन्देल जई 2009-1 (जे.एच.ओ -2009-1)	इसके पौधे गहरे हरे रंग के होते हैं। 50 प्रतिशत पुष्पन 115 से 120 दिनों में होता है। पूर्ण परिपक्वता 140 दिनों में होती है। बीज बड़े आकार के होते हैं। केन्ट की अपेक्षा 7.5 प्रतिशत ज्यादा उपज प्राप्त होती है। स्क्लेरोटियम सड़न, पत्ती सिकुड़न एवं नेमेटोड के प्रति सहनशील है। हरा चारा उपज 570 क्विंटल/हैक्टर एवं सूखा चारा उपज 127 क्विंटल/हैक्टर प्राप्त होती है।
8	ओ.एल.-1769-1	पौधों की लम्बाई 126.9 सें.मी. होती है। पत्ती-तना अनुपात 0.69 और बीज बड़े आकार के होते हैं। 100 बीजों का वजन 4.18 ग्राम होता है। 50 प्रतिशत पुष्पन 132 दिनों में होता है एवं पूर्ण परिपक्वता 157 दिनों में हो जाती है। हरा चारा उपज 487.8 क्विंटल/हैक्टर एवं सूखा चारा उपज 102 क्विंटल/हैक्टर प्राप्त होती है।

एल.एल. कम्पोजिट

एल.एल. कम्पोजिट-3

पौधे सीधे खड़े और मध्यम आकार के लम्बे (72 सें.मी.) होते हैं। पत्तियां बड़े आकार की गहरे हरे रंग की होती हैं। पुष्पों की संख्या अच्छी रहती है एवं रंग बैंगनी होता है। प्रति 1000 बीजों का भार 2.5-2.8 ग्राम होता है। खेत की परिस्थिति के अनुसार यह पाउडरी मिल्ड्यू के प्रति सहनशील है। पहली कटाई 60 दिनों में प्राप्त होती है। इसके बाद ठंड के मौसम में 40 दिनों के अंतराल पर कटाई करनी चाहिए एवं गर्मी के मौसम में 30 दिनों में कटाई करने लायक हो जाती है। हरा चारा उपज 450 क्विंटल/हैक्टर एक मौसम में एवं सूखा चारा उपज 185 क्विंटल/हैक्टर प्राप्त होती है। इसकी बीज उपज 3.17 क्विंटल/हैक्टर होती है।

आर.एल.-88

पौधे की ऊंचाई 60-65 सें.मी. (30 दिनों की कटाई के बाद) होती है एवं सीधा खड़ा रहता है। इसकी खेती वर्षभर कर सकते हैं और पत्तियां चौड़ी होती हैं। पौधा परिपक्वता तक सीधा खड़ा रहता है। फूल गहरे नीले रंग के होते हैं। पहली कटाई 50-60 दिनों में करने लायक हो जाती है। इसके बाद 30 दिनों के अंतराल में कटाई करते रहना चाहिए। गर्मी एवं शरद ऋतु में 35 दिनों के अंतराल में कटाई करते रहना चाहिए। इस किस्म में 7-8 कटाई एक वर्ष में प्राप्त हो जाती है। इसमें क्रूड प्रोटीन की मात्रा 20-30 प्रतिशत होती है।

लूसर्न

अन्य किस्मों की अपेक्षा इसमें पुन: वृद्धि जल्दी होने लगती है। हरा चारा उपज 750 क्विंटल/हैक्टर, सूखा चारा उपज 225 क्विंटल/हैक्टर और एक वर्ष में सात उपज प्राप्त होती हैं।

तिवड़ा की उन्नत किस्में

निर्मल (बी-1)

यह किस्म उतेरा खेती करने के लिए उपयुक्त है। बीज मध्यम आकार के होते हैं। यू.डी.ए.पी. की मात्रा (0.20 प्रतिशत) होती

उन्नत चारा किस्मों से हरे चारे की आपूर्ति

तिवड़ा

है। बीज उपज 13.5 क्विंटल/हैक्टर और चारा उपज 15.8 क्विंटल/हैक्टर प्राप्त होती है। पूर्ण परिपक्वता 120-130 दिनों में हो जाती है।

पूसा-24

इस किस्म में पूर्ण परिपक्वता 100 से 110 दिनों में होती है। ओ.डी.ए.पी. की मात्रा 0.20 प्रतिशत होती है। बीज उपज 13.5 क्विंटल/हैक्टर एवं चारा उपज 61.1 क्विंटल/हैक्टर प्राप्त होती है। बीज का आकार तिकोना व भूरे रंग का होता है।

रतन

यह किस्म धान आधारित उतेरा के लिए उपयुक्त है। सामान्य उपज 15.3 क्विंटल/हैक्टर और उतेरा में 6 क्विंटल/हैक्टर प्राप्त होती है। पूर्ण परिपक्वता 108 से 116 दिनों में होती है। ओ.डी.ए.पी. की मात्रा 0.06 प्रतिशत होती है। फूलों का रंग नीला होता है एवं पुष्पन अच्छा होता है।

प्रतीक

इस किस्म का विकास छत्तीसगढ़ द्वारा किया गया है। सामान्य खेती में उत्पादन 15.6 क्विंटल/हैक्टर एवं उतेरा में 9.0 क्विंटल/हैक्टर प्राप्त होता है। पूर्ण परिपक्वता 110-115 दिनों में होती है। यह पाउडरी मिल्ड्यू के प्रति सहनशील है। ओ.डी.ए.पी. की मात्रा 0.08 प्रतिशत होती है।

महातिवड़ा

इस किस्म को भी छत्तीसगढ़ में विकसित किया गया है। इसमें ओ.डी.ए.पी. की मात्रा 0.074 प्रतिशत है, जो कि नहीं के बराबर है। पूर्ण परिपक्वता 95 से 110 दिनों में होती है। उपज 15.5 क्विंटल/हैक्टर प्राप्त होती है। चारे के लिए 18.6 क्विंटल/हैक्टर उपज प्राप्त होती है। बीज बड़े आकार के होते हैं और पत्तियां चौड़ी होती हैं। फूलों का रंग गुलाबी होता है। ■

समय की मांग है जैविक पोल्ट्री उत्पादन

बलविंदर सिंह ढिल्लो, ए.पी.एस. धालीवाल और **जे.एस. बराड़**
कृषि विज्ञान केंद्र, भटिंडा (पंजाब)

"किसी भी रासायनिक और माइक्रोबियल अवशेषों के बिना सुरक्षित पोल्ट्री उत्पादन समय की मांग है । इसलिए जैविक पोल्ट्री उत्पादन पर अधिक जोर देने से हम पोल्ट्री कल्याण से समझौता किए बिना सुरक्षित पोल्ट्री उत्पादों का उत्पादन कर सकते हैं। जैविक पोल्ट्री उत्पादन का यह दृष्टिकोण उपभोक्ताओं को बेहतर स्वास्थ्य देने और रोगमुक्त पर्यावरण करने की दिशा में सही कदम है।"

भारतीय अर्थव्यवस्था में पशुधन एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। लगभग 20.5 मिलियन लोग अपनी आजीविका के लिए पशुधन पर निर्भर हैं। यह सभी परिवारों के लिए 14 प्रतिशत के मुकाबले छोटे परिवारों की आय में 16 प्रतिशत का योगदान देता है। यह ग्रामीण समुदाय के दो-तिहाई लोगों को आजीविका प्रदान करता है। पशुधन भारत में लगभग 8.8 प्रतिशत आबादी को रोजगार भी देता है। देश में कम और खराब उत्पादन प्रदर्शन के साथ विशाल पशुधन संसाधन है। यह क्षेत्र 4.11 प्रतिशत सकल घरेलू उत्पाद और कुल कृषि सकल घरेलू उत्पाद में 25.6 प्रतिशत योगदान देता है।

पोल्ट्री आवास और प्रबंधन

जैविक आवास और प्रबंधन पोल्ट्री के सभी सामान्य व्यवहार पैटर्न प्रदर्शित करने का अवसर प्रदान करता है। यह पक्षियों के तनाव को कम करने में मददगार होता है। यूरोपीय और अमेरिकी देशों में कार्बनिक पोल्ट्री उत्पादन के लिए मोबाइल हाउस निश्चित आवास प्रणाली की तुलना में बहुत लोकप्रिय है। मोबाइल आवास का मुख्य लाभ यह है कि पक्षियों को ताजा घास के क्षेत्रों में स्थानांतरित किया जा सकता है ताकि बाहरी क्षेत्र में मृदा से बने परजीवी का खतरा कम हो सके। मोबाइल हाउसिंग का एक बड़ा नुकसान यह है कि अन्य सभी उत्पादन सामग्री (यानी आहार, कूड़े की सामग्री और पानी इत्यादि) को घरों से ले जाने की आवश्यकता होती है, जिससे श्रम में काफी वृद्धि होती है और अंडे की उत्पादन लागत में बढ़ोतरी होती है। कुल मिलाकर मोबाइल आवास की लागत सीमित प्रणाली से अधिक होने की आशंका है। इसके अलावा, भारत में मोबाइल हाउसिंग सिस्टम का दायरा वित्तीय और क्षेत्रीय बाधाओं के कारण बहुत सीमित है।

आवास को इस तरह से निर्मित किया जाना चाहिए कि पक्षियों को शिकारियों से सुरक्षित रखा जा सके। पोल्ट्री शेड की नियमित सफाई महत्वपूर्ण है। प्रमाणित एजेंसियों द्वारा निर्धारित समय के अनुसार कृत्रिम प्रकाश का उपयोग किया जा सकता

पोल्ट्री का महत्व

भारत में उत्पादित कुल अंडों में लगभग 94 प्रतिशत का मुर्गियों द्वारा योगदान दिया जाता है, जबकि शेष 6 प्रतिशत समान रूप से बत्तख और अन्य पोल्ट्री द्वारा उत्पादित किये जाते हैं। पोल्ट्री सेक्टर ग्रामीण गरीबों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में सुधार लाने, परिवार की आय बढ़ाने और ग्रामीण इलाकों में भूमिहीन मजदूरों, छोटे, सीमांत किसानों और महिलाओं के बीच विशेष रूप से महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अब दिन-प्रतिदिन, उपभोक्ताओं को उनके द्वारा खाए जाने वाले खाद्य उत्पादों की सुरक्षा और गुणवत्ता के बारे में अधिक जानकारी हो रही है। आम लोगों की क्रय शक्ति लगातार बढ़ रही है इसलिए वे अधिक भुगतान करने के लिए परेशान हुए बिना सुरक्षित उत्पाद का उपभोग करने में रुचि रखते हैं।

मुर्गी पालकों के लिए लाभकारी है जैविक पोल्ट्री पालन

स्वास्थ्य देखभाल और रोग निदान

उपयुक्त प्रबंधन प्रथाओं को पक्षियों के कल्याण के लिए निर्देशित किया जाता है। इससे कई प्रकार के संक्रमणों को रोका जाता है। रोगी और घायल पक्षियों को तत्काल और पर्याप्त उपचार दिया जाना चाहिए। जब पक्षियों में रोग होता है, तो कारण को ढूंढने, खत्म करने और प्रबंधन प्रथाओं को बदलकर भविष्य में रोग होने से रोकना चाहिए। एंटीबायोटिक का उपयोग न करके टीकाकरण केवल तब किया जाना चाहिए जब रोगों की जानकारी हो या क्षेत्र में समस्या होने की उम्मीद हो और इन रोगों को अन्य प्रबंधन तकनीकों द्वारा नियंत्रित नहीं किया जा सकता है। होम्योपैथी और आयुर्वेदिक सहित प्राकृतिक दवाओं और विधियों के उपयोग पर जोर दिया जाना चाहिए। गर्म और आर्द्र जलवायु क्षेत्र में, कोसिडियोसिस और परजीवी समस्याएं अधिक हैं। ये प्रबंधन प्रणालियां प्रजातियों के विशिष्ट आहार में पोल्ट्री पहुंच प्रदान करके अच्छी वेंटिलेशन के साथ आवास की स्थिति और स्वच्छ चराई प्रणाली और शुष्क कूड़े के निपटान के साथ प्राकृतिक व्यवहार व्यक्त करने के लिए पर्याप्त जगह भी इन सभी स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं को दूर करने में मदद करती हैं।

है। मुक्त सीमा प्रणाली में मांस उत्पादन की लागत, सीमित प्रणाली से भी अधिक है। कुक्कुट के पास बाहरी चराई वाले क्षेत्र, ताजा हवा, साफ पानी, संतुलित आहार, धूल स्नान सुविधाओं और खरोंच के लिए एक क्षेत्र तक आसानी से पहुंच होनी चाहिए। इसलिए पशु कल्याण को बढ़ाने के लिए जोर दिया जाता है। डी-बीकिंग और बीक ट्रिमिंग आमतौर पर निषिद्ध प्रथाएं होती हैं। कुछ प्रमाणित एजेंसियां अभी भी ऊपरी चोंच की 5 मि.मी. तक ट्रिमिंग और डी-बीकिंग की अनुमति देती हैं। ऐसा माना जाता है कि यह ट्रिमिंग पोल्ट्री पक्षियों में तनाव पैदा करती है, इसलिए आमतौर पर जैविक पोल्ट्री उत्पादन में इसे नहीं किया जाता है।

जैविक पोल्ट्री उत्पाद की बढ़ती मांग

वैज्ञानिक रिकॉर्ड रखना

व्यवस्थित रिकॉर्ड रखने की गतिविधियों में भविष्य के संदर्भ, मूल्यांकन और निगरानी रखना शामिल है। यह लेनदारों, अन्य पशु संपत्ति मालिकों और अन्य लोगों को रिपोर्ट करने में सहायता करता है, जो पशुधन व्यवसाय की वित्तीय स्थिति में रुचि रखते हैं। जैविक पोल्ट्री उत्पादन के लिए महत्वपूर्ण रिकॉर्ड प्रजनन रिकॉर्ड है जैसे खरीदे गए पक्षियों के स्रोत के लिए पंजीकरण, कार्बनिक आहार/राशन रिकॉर्ड तैयार करना, जैविक आहार खरीद रिकॉर्ड, पूरक आहार और सूची, जैविक पोल्ट्री चरागाह रिकॉर्ड, स्वास्थ्य देखभाल उत्पादों की सूची, स्वच्छता उत्पादों की

स्वास्थ्य के लिए बेहतर हैं जैविक पोल्ट्री उत्पाद

पोल्ट्री आहार विकल्प

पोल्ट्री पक्षियों को अच्छी गुणवत्ता का 100 प्रतिशत जैविक रूप से उगाया जाने वाला आहार खिलाया जाना चाहिए। सभी अवयवों को कार्बनिक के रूप में प्रमाणित किया जाना चाहिए। आहार के 5 प्रतिशत तक विटामिन और खनिज की खुराक को छोड़कर, पोल्ट्री पक्षियों को आहार एक ऐसे रूप में दिया जाना चाहिए जो पक्षियों को उनके प्राकृतिक भोजन व्यवहार और पाचन आवश्यकताओं को निष्पादित करने की अनुमति दे। मुर्गियों के पाचन तंत्र को चारे की बजाय कीड़े, बीज और अनाज को संभालने के लिए बनाया गया है, इसलिए यदि पक्षियों का आवश्यक स्तर पर व्यवस्थित रूप से पालन किया जाता है, तो इन्हें केंद्रित संतुलित आहार देने की आवश्यकता होती है। किसी जैविक पोल्ट्री आहार का सबसे बड़ा घटक अनाज (मक्का) है। उच्च गुणवत्ता वाले तत्व विशेष रूप से फलियां आहार पूरक हो सकती हैं। मटर, सेम और सरसों तथा घरेलू प्रोटीन स्रोतों का उपयोग किया जा सकता है। इस संबंध में मटर, जैविक आहार फॉर्मूलेशन की ओर अधिक गुंजाइश प्रदान करते हैं। उन्हें मुर्गी पालन में टेबल चिकन के लिए 250 से 300 ग्राम प्रति कि.ग्रा. और 150 से 200 ग्राम प्रति कि.ग्रा. के बीच शामिल किया जा सकता है। मछली के तेल का प्रयोग आहार में कार्बनिक राशन के रूप में किया जा सकता है और पूर्ण वसा सोया की तुलना में यह आवश्यक अमीनो अम्ल है। पोल्ट्री राशन में इसका उपयोग सीमित है। अंकुरित अनाज विटामिन का एक अच्छा स्रोत है। सिंथेटिक अमीनो अम्ल को प्रतिस्थापित करने के लिए उपयोग किया जा सकता है। चूना पत्थर और फॉस्फेट चट्टान का जैविक राशन के लिए खनिज स्रोत के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। परतों के लिए चूना पत्थर ग्रिट और ऑयस्टर खोल अंडे के उत्पादन के लिए आवश्यक कैल्शियम प्रदान करता है। आवश्यक अमीनो अम्ल की आवश्यकता कार्बनिक सोयाबीन, स्किम दूध पाउडर, आलू प्रोटीन, मक्का ग्लूटन आदि के आहार के माध्यम से पूरी की जा सकती है। पक्षियों को बिना किसी एंटीबायोटिक और बैक्टीरियोलॉजिकल अवशेषों के गुणवत्ता वाले पानी की निरंतर पहुंच और आपूर्ति होनी चाहिए।

सूची, जैविक अंडे पर मासिक झुंड रिकॉर्ड, जैविक मांस, पोल्ट्री झुंड रिकॉर्ड, मासिक जैविक अंडे पैकिंग और बिक्री रिकॉर्ड।

जैविक पोल्ट्री के प्रचार के लिए नीति हस्तक्षेप

जैविक खेती के समग्र उद्देश्यों के अनुसार जैविक पोल्ट्री क्षेत्र के निरंतर विकास के लिए उपयुक्त आवश्यक नियमों को विकसित करना चाहिए। इसके अलावा, सरकार को राष्ट्रीय और क्षेत्रीय विपणन, केंद्रीकृत पैकिंग, प्रसंस्करण सुविधाओं के विकास और प्रसंस्करण अनुदान योजनाओं के लिए भविष्य में अवसर प्रदान करने चाहिए। सरकार जैविक मानकों की आवास और भंडारण दर आवश्यकताओं को अनुकूलित करने में पोल्ट्री उत्पादकों की सहायता के लिए पूंजी निवेश अनुदान कर सकती है।

भारत में जैविक पोल्ट्री उत्पादन राष्ट्रीय स्तर पर किसी भी औपचारिक मानकों द्वारा अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियों द्वारा निर्धारित मानकों को छोड़कर नियंत्रित नहीं किया जाता है। सभी भारतीय उत्पादक जो अपने उत्पादों को जैविक पोल्ट्री के रूप में लेबल करना चाहते हैं, उन्हें आईएफओएएम (जैविक कृषि आंदोलन के अंतर्राष्ट्रीय संघ) मानकों का पालन करना चाहिए। एक अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ में, जैविक पशुधन उत्पादन के लिए आईएफओएएम मानकों में अधिकांश राष्ट्रीय जैविक पशुधन मानकों को शामिल किया गया है। इन मानकों का एफएओ (खाद्य और कृषि संगठन) जैसे अंतर्राष्ट्रीय व्यापार समझौतों के मसौदे पर कुछ प्रभाव पड़ा है। पोल्ट्री के लिए प्रसंस्करण और विपणन मानकों का विकास करना, इसमें कृषि के प्रकार से संबंधित संकेतों के वैकल्पिक उपयोग सहित विशेष रूप से व्यापक इनडोर (बार्न-रीयर), फ्री-रेंज, पारंपरिक फ्री-रेंज और फ्री-रेंज शामिल हैं।

गहन प्रबंधित कार्बनिक उत्पादन में प्रयुक्त पोल्ट्री के लिए सबसे आम प्रणालियों में पर्यावरणीय प्रभावों (एन लीचिंग और अमोनिया वाष्पशीलता का जोखिम), पशु कल्याण, पोल्ट्री, वर्कलोड और प्रबंधन में उच्च मृत्यु दर के संबंध में कुछ कमियां हैं। उन प्रणालियों की तलाश करने की आवश्यकता है, जहां आउटडोर, फ्री रेंज सिस्टम (पशुधन के लिए) का निर्माण और प्रबंधन किया जाता है जिससे पशुधन एक ही समय में कृषि प्रणालियों के अन्य हिस्सों पर सकारात्मक प्रभाव डालता है।

जैविक उत्पादों के साथ फ्री रेंज सिस्टम उत्पादकों यानी जैविक अंडा और मांस के लिए बहुत उपयोगी है। इन उत्पादों की कीमतों और कमाई की पर्याप्त राशि के साथ विश्वव्यापी मान्यता आवश्यक है, हालांकि जैविक खेती में उत्पादन की लागत में वृद्धि हुई है। परंतु इसका अधिकांश भाग उच्च लागत की भरपाई करता है। ■

संरक्षित खेती से मक्का की भरपूर पैदावार

जे.एस. मिश्र
विभागाध्यक्ष, फसल अनुसंधान विभाग
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना (बिहार)

“मुख्य फसल के अतिरिक्त बिहार में मक्का अंत:फसल प्रणाली के रूप में मक्का+अरहर, मक्का+आलू, मक्का+लोबिया, मक्का+मटर आदि फसलों के साथ उगायी जाती हैं। मौसम के बदलते परिवेश की वजह से प्राय: तापमान में परिवर्तन होता रहता है। पानी की सीमित उपलब्धता तथा सिंचाई में अधिक लागत ऐसे मुद्दे हैं, जिन पर ध्यान देने की आवश्यकता है। प्राय: यह देखा गया है कि बदलते मौसम के लिए मक्का में गेहूं की अपेक्षा अधिक सहनशीलता होती है। इसलिए मौसम के बदलाव का हानिकारक प्रभाव धान एवं गेहूं की अपेक्षा इस पर कम होता है। बिहार में आने वाले समय में मक्का एक ऐसी फसल होगी, जो बढ़ती हुई जनसंख्या एवं पशुओं दोनों को खाद्य सुरक्षा प्रदान करेगी।”

बिहार में धान एवं गेहूं के बाद मक्का तीसरी मुख्य खाद्यान्न फसल है। वर्ष 2016-17 के आंकड़ों के अनुसार प्रदेश में मक्का की खेती 7.21 लाख हैक्टर क्षेत्र में की गई। इससे कुल 38.46 लाख टन मक्का उत्पादन हुआ था। यहां पर मक्के की औसत उत्पादकता 5,335 कि.ग्रा./हैक्टर है (सारणी-1)। बिहार में इसकी खेती वैसे तो प्रदेश के सभी 38 जिलों में खरीफ, रबी एवं बसन्त के मौसम में की जाती है, परन्तु उत्तर बिहार के 11 जिलों मुख्यत: मुजफ्फरपुर, पूर्वी चंपारण, वैशाली, कटिहार, पूर्णिया, समस्तीपुर, बेगूसराय, खगड़िया, भागलपुर, अररिया, एवं मधेपुरा में प्रदेश की कुल फसल का तीन-चौथाई क्षेत्रफल मक्का है। ये जिले वर्षा ऋतु में बाढ़ प्रभावित रहते हैं। उत्पादकता के अनुसार जिलों का विवरण सारणी-2 में दिया गया है।

खरीफ-मक्का पूर्ण रूप सें वर्षा आधारित है। मौसम की अनिश्चितता एवं बदलाव की वजह से इसकी खेती अधिक जोखिम भरी होती है। इस मौसम में मृदा में अधिक नमी, अधिक कीट, रोगों और खरपतवारों का दबाव होता है। कई बार बाढ़ एवं अतिवृष्टि के कारण मक्का की फसल नष्ट हो जाती है। रबी एवं बसन्त के मौसम में मक्का की अधिक उत्पादकता होती है। इन मौसमों में इसको लम्बी अवधि, साफ आसमान, कम कीट, रोगों और खरपतवारों का दबाव एवं सुनिश्चित सिंचाई की आवश्यकता होती है।

संरक्षित खेती में न्यूनतम जुताई एवं जीरो टिलेज किया जाता है। इससे फसल अवशेष मृदा की सतह पर बने रहते हैं और मृदा क्षरण बहुत कम हो जाता है। सामान्यत: 30 प्रतिशत तक फसल अवशेषों द्वारा मृदा

का ढका रहना आवश्यक है। संरक्षित खेती में फसल विविधीकरण एवं फसलचक्र अपनाना अति आवश्यक है। सामान्यत: किसान एक ही प्रकार का फसलचक्र कई वर्षों तक अपनाते हैं। उदाहरण के लिए धान-गेहूं फसल प्रणाली वर्षों से किसान एक ही खेत में लगा रहे हैं। इससे मृदा की उर्वरता पर सीधा असर पड़ता है। फसल विविधीकरण मृदा की उर्वरता बनाए रखता है तथा कीटों एवं रोगों को भी कम करता है।

संसाधन संरक्षण तकनीक

संरक्षित खेती के सिद्धांतों को पूर्ण रूप से लागू करने के लिए कई संसाधन संरक्षण तकनीकें अपनाई जाती हैं जैसे-लेजर भूमि समतलीकरण, बैड प्लान्टर, हैप्पी सीडर, टर्बो सीडर से शून्य जुताई, बूंद-बूंद सिंचाई आदि। इससे फसल संसाधनों का प्रबंधन सुचारू रूप से किया जाता है। ये सभी तकनीकें संसाधनों की कुशलता बढ़ाती हैं। इन तकनीकों से वैश्विक तपन वृद्धि को कम किया जा सकता है।

लेजर लेवलर द्वारा भूमि का समतलीकरण

संरक्षित खेती में खेत का समतल होना आवश्यक है। लेजर लेवलिंग भूमि समतलीकरण की आधुनिक विधि है। भूमि समतलीकरण अच्छे मृदा स्वास्थ्य एवं अधिक फसल पैदावार के लिए अति आवश्यक है। प्राय: यह देखा गया है कि परंपरागत विधि से तैयार किये गए खेतों में 10 से 25 सें.मी. तक जमीन ऊंची-नीची रहती है। इसके कारण खेत में एक समान पानी लगाने में दिक्कत आती है एवं पानी भी ज्यादा लगता है। निचले क्षेत्रों में ज्यादा पानी भरने के कारण फसल को नुकसान पहुंचता है। इसके अलावा परंपरागत विधि से समतलीकरण वाले खेतों में पौधों का जमाव भी एक समान नहीं होता है।

लेजर लेवलर विधि से खेत समतलीकरण

लेजर लेवलर विधि से खेत समतलीकरण के फायदे

- खेत में पानी एक समान तथा आवश्यकतानुसार
- पानी की लगभग 30 प्रतिशत बचत
- पूरे खेत में फसल का एक समान जमाव
- खरपतवार का जमाव कम तथा खरपतवारनाशी छिड़काव करने पर समान रूप से प्रभाव
- रासायनिक खाद एक समान रूप से डालना संभव, जिससे पौधों को एक समान मात्रा में पोषक तत्व की प्राप्ति
- पैदावार में बढ़ोतरी

सारणी 1. विभिन्न मौसमों में मक्का का कुल क्षेत्रफल, उत्पादन एवं औसत पैदावार (वर्ष 2016-17)

मौसम	क्षेत्रफल (लाख हैक्टर)	उत्पादन (लाख टन)	उत्पादकता (कि.ग्रा./हैक्टर)
खरीफ	2.41	6.24	2, 586
रबी	2.85	21.32	7, 482
बसन्त	1.95	10.90	5, 601
कुल	7.21	38.46	5, 335

जीरो टिलेज मशीन

बुआई के तरीके

संरक्षित खेती पर आधारित तकनीकियों में जीरो टिलेज मशीन द्वारा बिना जुताई के बुआई, बैड प्लान्टर से मेड़ पर बुआई, मक्का आधारित अंत: फसल प्रणाली आदि मुख्य हैं।

जीरो टिलेज तकनीक

संरक्षित खेती पर आधारित यह एक ऐसी तकनीक है जिसमें बिना खेत की तैयारी किये ही जीरो टिलेज मशीन द्वारा मक्का की बुआई करते हैं। इस विधि में मशीन के द्वारा खाद एवं बीज एक साथ लाइन में डाले जा सकते हैं। जीरो टिलेज मशीन में

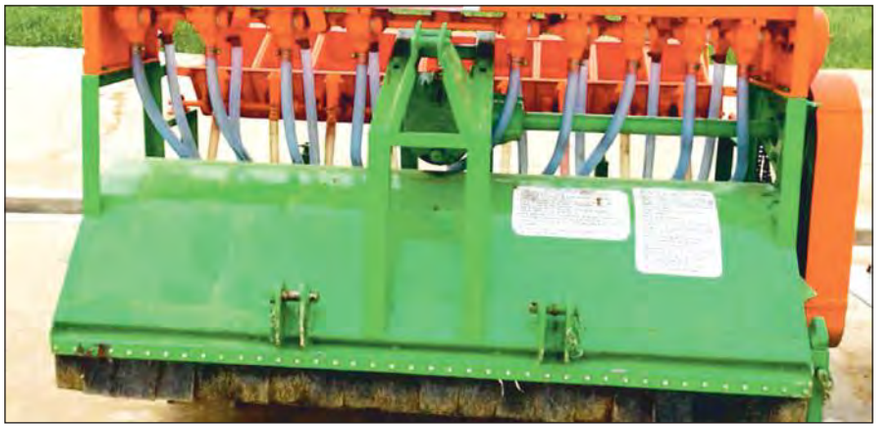

हैप्पी सीडर

सिंचाई प्रबंधन

मक्का में जल प्रबंधन मुख्य रूप से मौसम पर निर्भर करता है। खरीफ मौसम में यदि मानसूनी वर्षा सामान्य रही तो सिंचाई की जगह जल निकास पर ध्यान देने की आवश्यकता होती है। असामान्य वर्षा होने पर फसल को सिंचाई की आवश्यकता होती है। सिंचाई की दृष्टि से नई पौध, घुटनों तक की ऊंचाई, फूल आने तथा दाने भराव की अवस्थाएं सबसे संवेदनशील होती हैं। इन अवस्थाओं में अगर सिंचाई की सुविधा हो तो सिंचाई अवश्य करनी चाहिए। भुट्टा निकलने से दाना बनने तक खेत में पर्याप्त नमी का होना अत्यंत आवश्यक होता है। पहली सिंचाई बहुत ही ध्यान से करने की आवश्यकता होती है क्योंकि अधिक पानी से छोटे पौधों की बढ़वार नहीं होती है। पहली सिंचाई में पानी मेड़ों के ऊपर से नहीं बहना चाहिए। सामान्य रूप से नालियों में मेड़ों से दो-तिहाई ऊंचाई तक ही पानी देना लाभदायक रहता है तथा इससे पानी भी 30 से 40 प्रतिशत कम लगता है। रबी एवं बसंत में 5-6 सिंचाइयों की आवश्यकता पड़ती है। सूक्ष्म जल प्रबंधन जैसे-एक बार में कम पानी लगाना, ज्यादा सिंचाई करना, फसल की क्रांतिक अवस्थाओं पर सिंचाई, ड्रिप व स्प्रिंक्लर के उपयोग को बढ़ावा देना आदि शामिल हैं।

सारणी 2. मक्का की उत्पादकता के अनुसार बिहार के जिलों का विवरण (वर्ष 2016-17)

मक्का की उत्पादकता (टन/हैक्टर)	जिलों के नाम
6.0 टन/हैक्टर से अधिक	दरभंगा, खगड़िया, कटिहार, पूर्णिया, अररिया, किशनगंज
4.0-6.0 टन/हैक्टर	नालंदा, जहानाबाद, अरवल, सारण, सीवान, सीतामढ़ी, शिवहर, समस्तीपुर, सहरसा, सुपौल, मधेपुरा
2.0-4.0 टन/हैक्टर	पटना, बक्सर, कैमूर, गया, नवादा, औरंगाबाद, गोपालगंज, पूर्वी चम्पारण, पश्चिमी चम्पारण, वैशाली, मधुबनी, बेगूसराय, जमुई, भागलपुर, बांका
2.0 टन/हैक्टर से कम	भोजपुर, रोहतास, मुजफ्फरपुर, मुंगेर, शेखपुरा, लखीसराय

रिले फसल

- बिहार के उत्तर-पूर्वी भाग में मार्च-अप्रैल में जब मक्का पकने को हो, तब खड़ी फसल में जूट के बीज छिड़क देते हैं, जब मक्के की फसल पक जाती है तो मई में काट लेते हैं। इसके बाद जून में जूट की खड़ी फसल में धान के बीज को छिड़क देते हैं। इस प्रकार एक वर्ष में तीन फसलें ली जा सकती हैं।
- रबी मक्का जब अप्रैल में पकने की अवस्था में हो तब ग्रीष्मकालीन सब्जियां एवं हरे चारे की फसल लगा देते हैं। मक्के के भुट्टे के ऊपरी भाग को काट देते हैं जिससे कि रिले फसल को प्रारम्भ में सूर्य का प्रकाश उचित मात्रा में मिल सके। इससे मक्का की उत्पादकता में कोई कमी नहीं आती है।

यह सुविधा होती है कि पंक्ति से पंक्ति एवं पौधे से पौधे की दूरी एवं बीज की गहराई आवश्यकतानुसार व्यवस्थित कर सकते हैं। अगर खेत में खरपतवार हैं तो बुआई से पहले खरपतवारनाशी दवाई का प्रयोग करके इन्हें नष्ट किया जा सकता है। इस मशीन से बुआई करने से किसान पैसे तथा समय की बचत कर सकते हैं तथा फसल की पैदावार में भी कमी नहीं आती।

जीरो टिलेज विधि के फायदे

जुताई लागत में कमी

सामान्यतौर पर किसान मक्का लगाने के लिए खेत की 3-4 बार जुताई करते हैं तथा पाटा लगाते हैं। इसकी लागत वर्तमान में 4000 रुपये प्रति हैक्टर आती है। इस विधि से यह लागत बचाई जा सकती है। इससे लगभग 85 प्रतिशत समय व 90 प्रतिशत डीजल की बचत होती है।

पानी की बचत

सामान्यतौर पर परंपरागत जुताई वाले खेतों की बजाय जीरो टिलेज खेतों में पानी लगाने में 25-30 प्रतिशत समय एवं पानी कम लगता है।

कम खरपतवार की समस्या

बिना जोते हुए खेतों में बुआई से पहले खरपतवार नियंत्रण करने से तथा फसल अवशेष की परत के कारण खरपतवार का जमाव कम होता है। इसके परिणामस्वरूप खरपतवार का बीज कम बनता है। आगामी वर्षों में खरपतवार की समस्या में कमी देखी जा सकती है। परंपरागत जुताई वाले खेतों में जुताई की वजह से जमीन की निचली सतह में दबे हुए खरपतवारों के बीज ऊपरी सतह में आ जाते हैं। ये उचित प्रकाश एवं हवा मिलने पर अधिक मात्रा में अंकुरित होकर अधिक खरपतवार की समस्या उत्पन्न करते हैं।

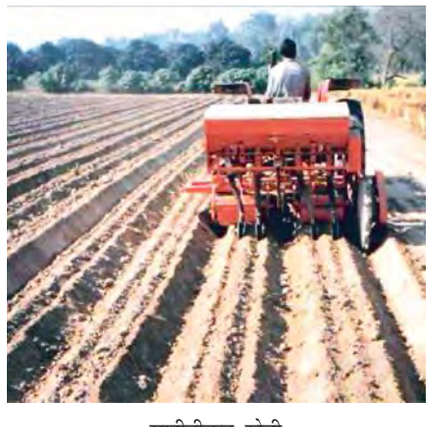

मशीनीकृत खेती

भूमि की दशा में सुधार

प्राय: यह देखा गया है कि बिना जुताई वाले खेतों में केंचुओं की संख्या अधिक हो जाती है। इससे मृदा की संरचना अच्छी बनती है तथा पानी का रिसाव सही प्रकार से होता है, जो कि मक्का के लिए लाभदायक है।

बुआई का समय

बिहार में मक्का की खेती खरीफ, रबी एवं बसन्त के मौसम में की जाती है। खरीफ-मक्का बोने का उचित समय जून का पहला पखवाड़ा होता है। इसके बाद बोई गई मक्का में कीटों तथा रोगों का प्रकोप बढ़ जाता है। रबी मक्का अक्टूबर के अंतिम सप्ताह से 15 नवंबर तक जबकि बसंत मक्का फरवरी के पहले सप्ताह से मार्च के प्रथम पखवाड़े में बोना उपयुक्त रहता है।

मक्का की फसल

सारणी 3. विभिन्न मौसमों के लिए मक्का की अनुमोदित किस्मों का विवरण

मौसम	संकर प्रभेद	संकुल प्रभेद
खरीफ	शक्तिमान-1, शक्तिमान-2, शक्तिमान-3, शक्तिमान-4, शक्तिमान-5, डी.एच.एम.-117, राजेंद्र संकर मक्का-3	सुआन, देवकी
रबी	शक्तिमान-1, शक्तिमान-2, शक्तिमान-3, शक्तिमान-4, शक्तिमान-5, डी.एच.एम.-117, राजेंद्र संकर मक्का-1, राजेंद्र संकर मक्का-2, गंगा 11	सुआन, देवकी, लक्ष्मी
बसंत	शक्तिमान-1, शक्तिमान-2, गंगा-11, एस.एच.एम.-2	सुआन, देवकी

बीज दर

मक्के का 20-25 कि.ग्रा. बीज एक हैक्टर के लिए उपयुक्त होता है। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 60-70 सें.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 20 सें.मी. रखी जाती है।

सारणी 4. मक्का के मुख्य रोगों एवं कीटों की रोकथाम के उपाय

क्र.सं.	कीट	नियंत्रण के उपाय
1.	तना मक्खी एवं अन्य रस चूसने वाले कीट	इमिडाक्लोप्रिड 10 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से बीजोपचार या इसका छिड़काव
		फोरेट 10 प्रतिशत ग्रेन्यूल 10 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से बुआई के समय खेत में प्रयोग करना चाहिए।
		डाईमेथोएट 30 प्रतिशत ई.सी. 1155 मि.ली./हैक्टर की दर से छिड़काव
2.	तना छेदक	क्लोरोपायरीफॉस एवं साइपरमेथ्रिन के मिश्रण का शुरुआत की अवस्था में प्रयोग
		ट्रायजोफॉस एवं डेल्टामेथ्रिन के सम्मिश्रण का 1.5 मि.ली./ली. पानी में घोल बनाकर प्रयोग
		कार्बोरिल 50 प्रतिशत डब्ल्यू.पी. 1.0 कि.ग्रा./हैक्टर अथवा डाईमेथोएट 30 प्रतिशत ई.सी. 660 मि.ली./हैक्टर की दर से बुआई के 20 दिनों बाद छिड़काव
		फोरेट 10 जी. का 10 कि.ग्रा./हैक्टर या कार्बोफ्यूरॉन 3 जी.का 25 कि.ग्रा./हैक्टर फसल की 6-7 पत्ती अवस्था पर पौधों में प्रयोग
रोग		
1.	टरसियम लीफ ब्लाइट (टरसियम पत्ती) झुलसा	इस रोग में पत्तों व शीथ पर चौड़ाई की ओर स्लेटी या भूरे रंग की गहरी पट्टियां दिखाई देती हैं। उग्र अवस्था में भुट्टे भी क्षतिग्रस्त हो जाते हैं
		भूमि को छूने वाली 2-3 रोगी पत्तियों को शुरू में ही तोड़ देने से एवं 30 से 40 दिनों की फसल पर 10 ग्राम राइजोलेक्स 50 डब्ल्यू0 पी0 प्रति 10 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करने से इसकी रोकथाम
		डाइथेन जेड-78 का 2 ग्रा./ली. या मेन्कोजेब का 2.5 ग्रा./ली. पानी में घोल बनाकर छिड़काव
2.	मेयडिस लीफ ब्लाइट (मेयडिस पत्ती झुलसा)	डाइथेन जेड-78 की 2 ग्राम दवा का 1 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव
3.	शीथ ब्लाइट एवं बेन्डिड लीफ	हेक्साकोनाजोल 1.5 ग्राम या टोलकोफॉस-मिथाइल 1.0 ग्राम या वेलिडामाइसिन 2.0 ग्राम का प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव
4.	डंठल सड़न (स्टॉक रॉट)	ब्लीचिंग पॉउडर की 4 कि.ग्रा./हैक्टर की मात्रा की दर से मृदा में ड्रेंचिंग
5.	डाउनी मिल्ड्यू (मृदुल रोमिल आसिता)	बारिश के पहले बुआई एवं रोग प्रतिरोधक किस्में जैसे कि प्रो-345, बायो-9636, पूसा अर्ली हाइब्रिड-5, प्रकाश जे. एच.-10655 एवं एन.इ.सी.एस.-117 उगाने से भी रोग की रोकथाम
		एप्रोन 35 एस.डी. का 2.5 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से बीजोपचार
		सिस्टेमिक फफूंदनाशी जैसे कि मेटालैक्सिल, रोडोमिल 25 डब्ल्यू.पी. का छिड़काव रोग के लक्षण दिखाई देने से पहले 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव

मक्का में कृषि क्रियाएं

उर्वरक प्रबंधन

खरीफ मक्का की अधिक पैदावार लेने के लिए 120 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस तथा 50 कि.ग्रा. पोटाश/ हैक्टर की जरूरत होती है। फॉस्फोरस तथा पोटाश की पूरी मात्रा एवं 50 कि.ग्रा.

खरपतवार के प्रकोप से प्रभावित फसल

संरक्षित खेती

जलवायु परिवर्तन के वर्तमान परिवेश को देखते हुए किसानों को ऐसी तकनीकों की जरूरत है, जिनसे खेती की लागत घट सके तथा बदलते पर्यावरण में लम्बे समय तक स्थायी एवं अधिक उत्पादकता प्राप्त हो सके। संरक्षित कृषि ऐसी पद्धति है, जिसमें कृषिगत लागत को कम रखते हुए अत्यधिक लाभ व टिकाऊ उत्पादकता प्राप्त की जा सकती है। साथ में प्राकृतिक संसाधनों जैसे-मृदा, जल, वातावरण व जैविक कारकों में संतुलित वृद्धि होती है। इसमें कृषि क्रियाओं उदाहरणार्थ-शून्य कर्षण या अति न्यून कर्षण के साथ कृषि रसायनों एवं अकार्बनिक व कार्बनिक स्रोतों का संतुलित व समुचित प्रयोग होता है ताकि कृषि की विभिन्न जैव क्रियाओं पर विपरीत प्रभाव न पड़े। संरक्षित खेती पर आधारित प्रबंध तकनीकियों ने यह साबित किया है कि इनसे लागत घट सकती है और लम्बे समय तक स्थाई व अधिक उत्पादकता ली जा सकती है। इन तकनीकियों के उपयोग से पर्यावरण में होने वाले हानिकारक प्रभाव को भी कम किया जा सकता है। न्यूनतम जीरो टिलेज, मृदा की सतह पर फसल अवशेष को कायम रखना तथा उचित फसलचक्र संरक्षित खेती के प्रमुख घटक हैं।

मेड़ पर मक्का की बुआई

परिस्थितियों और उद्देश्यों के अनुसार सामान्य तौर पर दो प्रकार की मेड़ों पर मक्का की बुआई की जा सकती है।

संकरी मेड़

इस प्रकार की मेड़ पर मक्का की बुआई सिंचित क्षेत्र के लिए लाभकारी होती है। इस विधि में 60 से 70 सें.मी. दूरी पर मेड़ बनायी जाती है। इसमें 30 से 35 सें.मी. की नाली तथा 30 से 35 सें.मी. मेड़ की चौड़ाई होती है, जिसके ऊपर 20 सें.मी. की दूरी पर मक्का की बुआई की जाती है। इस विधि से बोयी गई मक्का में अत्यधिक वर्षा का पानी नाली में चला जाता है और फसल पर इसका कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता है। सामान्य रूप से बोयी गई मक्का में अधिक बारिश होने के कारण पौधे की जड़ों को ऑक्सीजन नहीं मिल पाती है एवं पौधा पीला पड़ जाता है, जिसके कारण पैदावार घट जाती है।

चौड़ी मेड़

इस प्रकार की विधि में मेड़ की चौड़ाई 100 सें.मी. होती है तथा नाली की चौड़ाई 30-35 सें.मी. होती है। ऐसी मेड़ पर मक्का की दो पक्तियां लगायी जाती हैं। दोनों पंक्तियों की आपस में दूरी 50 सें.मी. रहती है।

मक्का का पौधा

नाइट्रोजन बुआई के समय देना चाहिए। नाइट्रोजन की दूसरी किश्त (40 कि.ग्रा.) बुआई के 50-60 दिनों के उपरान्त घुटने की ऊंचाई तक पौधे होने पर एवं तीसरी किश्त (30 कि.ग्रा.) भुट्टा निकलने के समय पौधों के पास देनी चाहिए। रबी मक्का में 150 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 75 कि.ग्रा. फॉस्फोरस तथा 50 कि.ग्रा. पोटाश/ हैक्टर की जरूरत होती है। तीन वर्ष में एक बार जिंक सल्फेट 25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से देना लाभदायक होता है।

खरपतवार प्रबंधन

खरीफ मक्का की कम पैदावार का प्रमुख कारण खरपतवार हैं। मक्का के लिए रासायनिक खरपतवारनाशी भारत में बहुत कम उपलब्ध हैं। इस मौसम के मुख्य खरपतवार मोथा तथा कुछ चौड़ी एवं संकरी पत्ती के होते हैं।

शून्य जुताई के अंतर्गत खरपतवार एक प्रमुख समस्या है। ये फसल की बुआई के पहले ही उग आते हैं तथा संसाधनों के लिए फसलों से स्पर्धा करते हैं। खरपतवार के प्रभावी नियंत्रण के लिए बुआई के एक दिन बाद टंकी में मिश्रित पैराक्वाट +

खरपतवारों का उत्तम नियंत्रण

एट्राजिन (1.0-0.5 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व/हैक्टर) का प्रयोग किया जाता है। शाकनाशी की अपेक्षित मात्रा का 500 लीटर पानी में मिलाकर फ्लैट-फैन नोजल से जुड़े नैपसैक स्प्रेयर की सहायता से समान रूप से छिड़काव किया जाता है। पैराक्वाट, प्रक्षेत्रों में बुआई के पहले उगे खरपतवारों को नियंत्रित करता है, जबकि एट्राजिन बुआई के बाद उगने वाले खरपतवारों के अंकुरण को रोकता है। मेड़ के ऊपर मक्का की बुआई करने के दो से तीन दिनों के अन्दर पेन्डीमेथिलीन+एट्राजिन (1.0 +0.5 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व/हैक्टर) का छिड़काव करने पर खरपतवार का जमाव कम होता है।

स्टेल सीड बेड तकनीक

इस विधि में सामान्यतौर पर मई में खेत में मेड़ बनाकर छोड़ दी जाती है जिससे कि मानसूनी वर्षा में खरपतवार उग जाएं। बाद में ग्लाइफोसेट 10 मि.ली/लीटर पानी में घोलकर छिड़काव किया जाता है। इसके बाद खेत को बिना जोते ही मक्का की बुआई कर दी जाती है। इस विधि का प्रयोग करने से खरपतवार की संख्या काफी हद तक कम हो जाती है।

मक्का आधारित सघन खेती

मक्का के साथ अन्य दलहनी एवं सब्जी वाली फसलों को एक साथ या अलग-अलग समय पर बुआई करके फसल की सघनता को बढ़ा सकते हैं। सघन खेती से खाद-पानी का समुचित उपयोग करके उत्पादकता एवं मुनाफा बढ़ाया जा सकता है। दलहनी फसलों के साथ सघन खेती से भूमि की उर्वरता बढ़ती है एवं

मक्का + लोबिया की अन्त:फसल द्वारा खरपतवारों का प्रबंधन

खरपतवार कम आते हैं। सघन खेती के उपयोग से जलवायु परिवर्तन से होने वाले हानिकारक प्रभाव को भी कम किया जा सकता है।

अंत:फसल

खरीफ मौसम में मक्का की दो पंक्तियों के बीच में सोयाबीन, अरहर, मूंग, लोबिया आदि की अंत:फसल उगा सकते हैं। रबी मौसम में मक्का + मटर, मक्का + आलू भी उत्तर बिहार में काफी प्रचलित है। अंत:फसल लेने से जहां एक ओर कुल पैदावार एवं भूमि की उर्वरता में वृद्धि होती है, वहीं दूसरी ओर खरपतवारों का प्रकोप भी कम होता है।

मक्का-आलू पर आधारित बहुफसली प्रणाली

मक्का + आलू आधारित कृषि बिहार की एक मुख्य अंत:फसल प्रणाली है। अगर इस प्रणाली में मक्का व आलू की पंक्तियां ठीक ढंग से व्यवस्थित की जायें तो इसके साथ-साथ बहुत कम लागत में अन्य फसलें ले सकते हैं। आलू को 50 सें.मी. की मेड़ बनाकर लगाया जाये तथा प्रत्येक दो मेड़ के बाद नाली में मक्का की एक पंक्ति लगाकर फरवरी में आलू की फसल निकाल लें। मक्का की दो पंक्तियों के बीच एक पंक्ति में लोबिया एवं एक पंक्ति में चारे वाली ज्वार लगा सकते हैं। मक्का जब पकने की अवस्था में आये तो भुट्टे से ऊपरी भाग काटकर पशुओं को चारे के रूप में खिला दें। इसके अलावा ग्रीष्मकालीन सब्जियां या ग्रीष्मकालीन मूंग की फसल भी लगा सकते हैं।

मक्का की फसल में खरपतवारों का प्रकोप

मक्का-अरहर पर आधारित बहुफसली प्रणाली

इस विधि में खरीफ के मौसम में 67 सें.मी. की मेड़ बनाई जाती है। इसमें मेड़ के ऊपर दो पंक्तियां मक्का उगायी जाती है और एक मेड़ के ऊपर अरहर लगायी जाती है। अक्टूबर में मक्का की कटाई के बाद मक्का के स्थान पर चना लगा सकते हैं। नवम्बर के प्रथम पखवाड़े में बेड प्लान्टर से गेहूं की बुआई कर सकते हैं।

कटाई

रबी मौसम में भुट्टा निकलने के 50-55 दिनों एवं खरीफ एवं बसंत मौसम में 35-40 दिनों के बाद भुट्टों के परिपक्व होने पर कटाई करनी चाहिए। ■

बीज अंकुरण की जांच

सुब्रता शर्मा, शिखा शर्मा और **पूजा गोस्वामी**
कृषि महाविद्यालय, बालाघाट, जवाहर लाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर (मध्य प्रदेश)

"बीज उत्पादन और अच्छी पैदावार के लिए अच्छे बीजों का होना अति आवश्यक है। अच्छे बीज की पहचान के लिए अंकुरण परीक्षण जरूरी है। इसके लिए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा कुछ मापदंड तय किये गये हैं, जिनके अनुरूप हम प्रयोगशाला अथवा खेत में चयनित बीजों का परीक्षण कर सकते हैं। इसी परीक्षण विधि के बारे में इस लेख में संक्षिप्त जानकारी देने का प्रयास किया गया है। इसके प्रयोग से किसान समय रहते बीजों की निम्न गुणवत्ता के कारण होने वाले नुकसान से बच सकते हैं।"

सर्वप्रथम फसल की कटाई के पश्चात बीजों को भंडारण से पूर्व अच्छी तरह साफ करना चाहिए। उपज से कटे, क्षतिग्रस्त, रोगग्रस्त एवं दूसरी फसलों के बीज व कचरे को अलग कर लेना चाहिए। बीज की नमी सुरक्षित सीमा से अधिक होने पर बीजों की जीवितता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। भंडारण से पूर्व व बुआई से पहले बीज अंकुरण परीक्षण कर अच्छी गुणवत्ता वाले बीजों का चयन कर भरपूर पैदावार ले सकते हैं।

अंकुरण क्षमता ज्ञात करने से पूर्व सावधानियां

- बीजों को अंकुरण परीक्षण से पूर्व अच्छी तरह मिलाकर उनमें से परीक्षण के लिए बीज निकालने चाहिये, ताकि सभी बीजों का परीक्षण समान रूप से हो सके।
- बीजों में नमी 10-12 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए। अधिक नमी से बीजों में कीटाणु की उत्पत्ति अधिक होती है।
- बीज रोगग्रस्त एवं कीटग्रस्त नहीं होने चाहिए। ये साफ होने के अलावा अन्य फसलों के बीजों से मुक्त होने चाहिए।

बीज अंकुरण जांच

प्रयोगशाला में बीज अंकुरण परीक्षण की विधियां

पेपर टेबल विधि

इस विधि में प्रयोगशाला में अंकुरण परीक्षण के लिए विशेष प्रकार के कागज का प्रयोग किया जाता है, जिसकी पानी सोखने की क्षमता अपेक्षाकृत अधिक होती है। इस प्रकार इसमें नमी कई दिनों तक सुरक्षित रहती है। बीजों पर विषैला प्रभाव नहीं पड़ता। इस विधि में टेबल पेपर को साफ पानी में गीला कर उसे टेबल पर बिछाकर पेपर की एक सतह पर 50 या 100 बीज (आकार के अनुसार) जमा देते हैं। इसके पश्चात दूसरे हिस्से से ढककर नीचे से मोड़कर लपेट देते हैं, ताकि बीज नीचे न गिर सके। इसके बाद इसे अंकुरण मापक यंत्र में $20-25^0$ सेल्सियस तापमान पर अंकुरण के लिए रख देते हैं। अंकुरण के लिए रखे गए बीजों को 10-12 दिनों के बाद सावधानीपूर्वक निकालते हैं। अंकुरण प्रतिशत

बीज अंकुरण की प्रारंभिक अवस्थाएं

बीज अंकुरण क्षमता का महत्व

- बीजों की अंकुरण क्षमता ज्ञात होने से बुआई के लिए बीज दर तय करने में आसानी होती है।
- भंडारण के लिए अथवा बीज खरीदने से पहले अंकुरण परीक्षण कर अच्छे बीजों का किसान चयन कर सकते हैं।

अंकुरण के लिए तैयार बीज

बीज अंकुरण टाट विधि

ज्ञात करने के लिए निम्नलिखित पांच श्रेणियों में इन बीजों को बांटा जाता है:

- **अंकुरित पौध:** वह पौध जिनमें तना व जड़ वाला हिस्सा पूरी तरह स्वस्थ एवं विकसित होता है।
- **असामान्य पौध:** वह पौध जिनमें तना या जड़ अथवा कोई एक हिस्सा पूर्ण रूप से विकसित नहीं हो पाया हो या अर्धविकसित हो। ऐसे पौधे उगने के थोड़े दिनों के बाद मर जाते हैं।
- **मृत या सड़ा बीज:** जिन बीजों में फफूंद लगी हो या सड़-गल गये हों एवं उन्हें दबाने पर गंदा पानी रिसता हो, ऐसे बीज इस श्रेणी में आते हैं।
- **स्वस्थ व अंकुरित बीज:** वे बीज जो अंकुरण के लिए रखने पर किसी कारणवश अंकुरित नहीं हो पाते एवं अनुकूल वातावरण मिलने पर इन बीजों के अंकुरित होने की संभावना रहती है।
- **कठोर बीज:** ये बीज कड़े आवरण से ढके होने के कारण पानी नहीं सोखते।

पेट्री प्लेट विधि

इस विधि में छोटे बीजों को पेट्री प्लेट या बंद डिब्बे में गीले सोखता कागज पर रख देते हैं। इसे 2-4 दिनों के अंतराल पर गीला करते रहते हैं। इस प्लेट को बीज अंकुरण यंत्र में रख देते हैं। लगभग 8-10 दिनों बाद अंकुरित बीजों का प्रतिशत ज्ञात कर लेते हैं।

टाट विधि

इस विधि में बोरे के टुकड़े को गीला करके समतल सतह पर बिछाकर पेपर टेबल विधि के समान ही बीज जमाकर व मोड़कर एवं लपेटकर दीवार से टिकाकर खड़ा कर नमीयुक्त एवं छायादार स्थान पर रखा जाता है। लगभग 8-10 दिनों पश्चात बोरी खोलकर टेबल पेपर विधि के समान बीजों का अंकुरण परीक्षण करते हैं।

रेत विधि

किसी ट्रे में साफ धुली एक सी महीन रेत भरकर उसमें गिने हुए बीजों को अंकुरण के लिए रख दिया जाता है। समय-समय पर रेत को पानी से गीला करते रहते हैं। बीजों के अंकुरण के पश्चात उसका प्रतिशत ज्ञात कर लिया जाता है।

भाकृअनुप की लोकप्रिय पत्रिका
'खेती' सितम्बर, 2019 अंक के प्रमुख आकर्षण

- गेहूं की फसल के रोग एवं प्रबंधन
- अरहर के साथ हल्दी की खेती है लाभकारी
- कृषि यंत्रों के रखरखाव के आसान तरीके
- आपदा में कैसे करें पशुओं की सुरक्षा
- आय वृद्धि का सरल तरीका है वन-बागवानी
- सौर ऊर्जा यंत्र का प्रयोग, प्रचालन एवं रखरखाव
- मृदा में फॉस्फोरस की उपयोगिता बढ़ाने के उपाय
- जायद में मूंग की खेती से अतिरिक्त लाभ
- अजोला : पशुधन के लिए पोषक पूरक आहार
- सुपारी के पेड़ की छाल है पशुओं के लिए एक वैकल्पिक सूखा चारा
- किसानों की आय दोगुनी करने में कृषि यंत्रीकरण की भूमिका
- वर्षाकालीन घासों से कमाएं पशुपालन में मुनाफा
- आजीविका और खाद्य सुरक्षा के लिए भारतीय परिवेश में भैंसों का महत्व
- टमाटर में ग्राफ्टिंग विधि से जीवाणु मुर्झान व सूत्रकृमि रोग प्रबंधन
- खरगोश खाल मूल्यसंवर्धन से रोजगार के नए आयाम

संपर्क सूत्र: व्यवसाय प्रबंधक, भाकृअनुप-कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय, कैब-1,
पूसा गेट, नई दिल्ली-110012 (दूरभाष: 25843657)

कृषि कार्यों में उपयोगी बैटरीचालित उपकरण

शिव प्रताप सिंह, मुकेश कुमार सिंह और **उत्पल एक्का**
कृषि अभियांत्रिकी संभाग, भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
पूसा, नई दिल्ली-110012

"मानव की मांसपेशीय ताकत के उपयोग को कम करते हुए कार्य क्षमता को बढ़ाने की तरफ भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली के कृषि अभियांत्रिकी संभाग द्वारा एक नये तरह की पहल करते हुए बैटरीचालित शक्ति इकाई पर अनुसंधान कार्य किया जा रहा है। इसका उत्साहजनक परिणाम प्राप्त हो रहा है, क्योंकि इस यंत्र को बागवानी में भी प्रयोग किया जा सकता है। बुआई व खरपतवार की निराई के भी लिये एक यंत्र विकसित किया गया है, जिसका विवरण इस लेख में दिया गया है।"

हमारे देश में कृषि के विभिन्न कार्यों को सहजता से करने के लिए उन्नत कृषि यंत्रों का निरंतर विकास किया जा रहा है। ये किसानों द्वारा उपयोग में लाए जा रहे हैं। उपलब्ध कृषि शक्ति स्रोत (मानव, पशु, ट्रैक्टर, पॉवरटिलर, इंजन, बिजली आदि) के आधार पर विकसित उन्नत कृषि यंत्रों को वर्गीकृत किया जाता है। इनमें मानवचालित उन्नत कृषि यंत्रों का भी एक महत्वपूर्ण स्थान है। परंपरागत तकनीक की अपेक्षा मानवचालित उन्नत कृषि यंत्रों से अधिक कार्य किये जाते हैं। अधिकतर मानवचालित उन्नत कृषि यंत्रों का उपयोग सीमित स्तर तक है। एक अध्ययन के अनुसार यह पाया गया कि जिस मानवचालित उन्नत कृषि यंत्र के प्रचालन में 30-40 वॉट से अधिक शक्ति लगती है तो उस यंत्र को दिनभर चलाने के लिए यंत्र चालक श्रमिक को एक अवधि के बाद आराम देना होता है, जिससे वह दिनभर कार्य कर सके। बागवानी के क्षेत्र में अभी यंत्रीकरण कम है।

रखरखाव

- बैटरी को समय-समय पर चार्ज करते रहना चाहिए, जिससे बैटरी का डिस्चार्ज होने से बचाव होगा एवं बैटरी ठीक रहेगी।
- जब मशीन से कुछ दिन काम नहीं करना हो तो इसकी शक्ति स्थानांतरण इकाई (गियर) को ग्रीस कर रखें।
- इसके पिछले बड़े पहिये की हवा की जांच करते रहें।
- वीडिंग टूल व सीडर पर लगी मिट्टी को साफ करके ही रखें।

सारणी 1. बैटरीचालित वीडर का विवरण

विवरण	मान
बैटरीचालित शक्ति इकाई का वजन, कि.ग्रा.	28
कुल चौड़ाई, सें.मी.	35
लम्बाई, सें.मी.	65
डीसी मोटर, वॉट	350
बैटरी 12 वोल्ट 14 एम्पीयर	2
ड्राइव पहिया	2
वीडिंग टूल 30 सें.मी.	1
बुआई मशीन दो हॉपर सहित	1
बोने वाली फसल	पालक, धनिया व गेहूं
खरपतवार निकाली जाने वाली फसलें	चौड़ी कतार वाली फसलें

बैटरी चार्जिंग

बैटरीचालित शक्ति इकाई में 12 वोल्ट 14 एम्पीयर की दो बैटरी लगती हैं, जो क्रम में जुड़ी होती हैं। इसे चार्ज करने के लिए एक पॉवर चार्जर की आवश्यकता होती है, जिसका इनपुट वोल्टेज 90-240 व 50/60 हर्ट्ज और डीसी आउटपुट 24 वोल्ट 1.6 एम्पीयर से 2.0 एम्पीयर होता है। इसमें दो तार होते हैं, लाल तार को निशान वाले टर्मिनल व नीले तार को निशान वाले टर्मिनल में लगाते हैं। जब चार्ज होता है तब चार्जर में लाल बत्ती जलती है और बैटरी पूरी चार्ज हो जाने पर हरी बत्ती जलने लगती है।

बैटरीचालित शक्ति इकाई

बैटरीचालित शक्ति इकाई बनाने से पहले एक चार पहिये वाले वीडर का विकास किया गया, जो 30 सें.मी. से अधिक कतार वाली फसल में चलाने के योग्य है। इस यंत्र को किसानों व कई संस्थानों ने खरीदा है। इसकी कार्यक्षमता वर्तमान में उपलब्ध वीडरों से अधिक है और प्रति इकाई क्षेत्रफल की दर से शक्ति भी कम लगती है। इसको एर्गोनामिक (श्रम संबंधी विज्ञान) नियमों को ध्यान में रखकर बनाया गया है। इसके चार पहिये के कई फायदे हैं, जिससे प्रेरित होकर बैटरीचालित शक्ति इकाई बनाने व विकसित करने की तरफ ध्यान दिया गया। बैटरीचालित शक्ति इकाई का संक्षिप्त तकनीकी विवरण सारणी-1 में वर्णित है।

सारणी 2. बैटरीचालित वीडर और मानवचालित वीडर की तुलना

विवरण	बैटरीचालित चार पहिया वीडर	मानवचालित चार पहिया वीडर	परंपरागत (खुरपे से)
बैटरीचालित शक्ति इकाई सहित वीडर का वजन (कि.ग्रा.)	30.0	11.0	0.3
वीडिंग करने की चौड़ाई (मि.मी.)	250	245	110
वीडिंग की गहराई (मि.मी.)	20-30	15-20	10-20
कार्य करने की गति (कि.मी. प्रति घंटा)	2.4	1.27	-
औसत कार्य क्षमता (वर्ग मीटर प्रति घंटा)	533	271	24.3
क्षेत्र दक्षता (प्रतिशत)	88.75	86.7	-
वीडिंग दक्षता (प्रतिशत)	97.8	97.5	99.8
चालक पर लगने वाला बल (न्यूटन)		155.4	
चालक द्वारा प्रतिदिन अधिकतम कार्य करने की क्षमता (घंटा) (अनुमानित)	8	5	5
कीमत (अनुमानित) (रुपये)	30,000	4,000	50

सारणी 3. बैटरीचालित चार पहिया सीडर की कार्य दक्षता

विवरण	बैटरीचालित चार पहिया सीडर
बैटरीचालित शक्ति इकाई सहित सीडर का वजन (कि.ग्रा.)	35
कतार से कतार की दूरी (मि.मी.)	215 से 450
बुआई करने की गहराई (मि.मी.)	25 से 35
कार्य करने की गति (कि.मी. प्रति घंटा)	2.9
औसत कार्य क्षमता, वर्ग मीटर प्रति घंटा	
पालक	1130
धनिया	1102
गेहूं	1130
क्षेत्र दक्षता (प्रतिशत)	90.6
चालक पर लगने वाला बल (न्यूटन)	
चालक द्वारा प्रति दिन अधिकतम काम करने की क्षमता (घंटा)	8
सीडर की कीमत (अनुमानित) (रुपये)	5500
बैटरीचालित शक्ति इकाई सहित सीडर की कीमत (अनुमानित) (रुपये)	35,500

मानव श्रम को बचाता बैटरीचालित कृषि यंत्र

बैटरीचालित चार पहिया वीडर

इस वीडर को चलाने के लिए फसलों की कतार से कतार के बीच की दूरी 300 मि.मी. से अधिक होनी चाहिए। बागवानी में निराई के लिए अब तक ऐसा यंत्र नहीं था, जो एक साथ 250 से 300 मि.मी. तक चौड़ाई में काम कर सके। बागवानी के साथ-साथ अन्य चौड़ी कतार वाली फसलों के लिए यह यंत्र कामयाब हो सकता है। इसके विभिन्न भागों में फ्रेम, डीसी मोटर, थ्रोटल, बैटरी, टी टाइप स्विंगिंग हत्था, 250 मि.मी. चौड़ा कटिंग ब्लेड, गहराई नियंत्रक, दो खिंचाव पहिये एवं गहराई नियंत्रण के लिए दो पहिये शामिल हैं। इसको एक चालक या कर्मी आसानी से चला सकता है। चालक

को अपना बल तभी लगाना पड़ता है, जब चालन में मोटर की शक्ति से अधिक की आवश्यकता हो। इस यंत्र की मानवचालित चार पहिया वीडर व परंपरागत (खुरपे से) विधि से तुलनात्मक कार्य क्षमता का विवरण सारणी-2 में दिया गया है।

बैटरीचालित चार पहिया सीडर

बागवानी उत्पादन अब अनाज उत्पादन को पार कर गया है। दूसरी तरफ इस क्षेत्र में यंत्रीकरण की अपार संभावनाएं हैं। इसी क्रम में एक दो-कतारीय सीडर का विकास किया गया। इससे बिना बीज मापक रोलर बदले धनिया, पालक एवं गेहूं की बुआई की जा सकती है। धनिया व पालक की फसल का उपयोग सब्जी एवं बीज उत्पादन के लिए होता है। दोनों के उत्पादन के लिए कतार से कतार की दूरी अलग-अलग है। इसलिए इस सीडर को समायोज्य दूरी के लिए विकसित किया गया है। इस यंत्र में दो बीज बुआई इकाइयां लगाई गई हैं। प्रत्येक इकाई में हॉपर, बीज मापक रोलर, कूंड़ बनाने वाला फाल, बीज मापक रोलर चलाने के लिए पहिया आदि हैं। दोनों इकाइयों को एक शॉफ्ट पर नट-बोल्ट की सहायता से लगाया जाता है। कतार से कतार की दूरी को 215 से 450 मि.मी. के बीच फसलों की आवश्यकतानुसार रखा जा सकता है। इस यंत्र का संक्षिप्त विवरण सारणी-3 में दिया गया है।

इस सीडर का मानवचालित गेहूं के सीडड्रिल से तुलनात्मक अध्ययन करने पर पता चलता है कि यह यंत्र एक चालक की बचत करता है, जिससे सीधे तौर पर 83 न्यूटन बल की बचत होती है। इसके अतिरिक्त एक से अधिक कतार की बुआई करता है, जिससे कार्यक्षमता 2.45 गुना अधिक हो जाती है।

सावधानियां

- जब मशीन का उपयोग नहीं है, तब बैटरी के टर्मिनल से तार को निकाल देना चाहिए, जिससे बैटरी डिस्चार्ज नहीं होगी।
- इस मशीन को चलाने के लिए चाबी लगाई जाती है। कार्य समाप्त होने के उपरांत इस बात का ध्यान रखें कि मशीन से चाबी निकालकर सुरक्षित रखें।
- मशीन के हैंडल पर दाईं तरफ एक्सीलेटर लगा हुआ है, जिससे मशीन की गति को नियंत्रित करते हैं। इसको एकाएक न बढ़ायें, नहीं तो नुकसान हो सकता है।
- इस मशीन के सभी भाग नट-बोल्ट से जुड़े हैं। इसलिए समय-समय पर नट-बोल्ट को कसते रहना चाहिए।
- वीडिंग टूल को लगाने के लिए इसके खांचे में इस प्रकार लगायें कि नट-बोल्ट कसने के बाद भी टूल जमीन पर समान रूप से लगा रहे।
- इस मशीन की शक्ति स्थानांतरण इकाई, जिसमें गियर लगे हैं, वहां ग्रीस या मोबिलऑयल समय-समय पर देते रहें।

उपयोग

बैटरीचालित शक्ति इकाई में बैटरी लगती है, जो एक निश्चित अवधि (3 साल) के बाद खराब हो जाती है और नई बैटरी ही लगानी पड़ती है। इस वजह से इसमें आवर्ती लागत आती है। इस लागत को आर्थिक रूप से समायोजित करने के लिए इस मशीन की उपयोगिता वर्ष में बढ़ानी होगी। अभी के प्रयास से एक वर्ष में इस मशीन को कम से कम चार महीने चलाया जा सकता है। इसकी उपयोगिता को और बढ़ाने के लिए इस शक्ति इकाई से स्प्रेयर को भी जोड़ा जा सकता है। इस शक्ति इकाई का प्रयोग स्थिर यंत्रों को भी चलाने में किया जा सकता है। यह कुछ अटैचमेंट बनाकर हो सकता है। इसकी बैटरी को चार्ज करने के लिए सोलर पैनल का भी उपयोग कर सकते हैं। ■

टमाटर मोथ का लाइट ट्रैप द्वारा नियंत्रण

टमाटर मोथ, टमाटर की फसल को हानि पहुंचाने वाला एक कीट है। इसके प्रकोप के बारे में देश में वर्ष 2014 में पता लगा। यह कीट लगभग हर प्रांत में पाया जाता है। टमाटर की पौध में रोपाई से लेकर फसल की तुड़ाई तक बड़ी संख्या में इस कीट से होने वाले नुकसान की आशंका बनी रहती है। यह देश के प्रमुख टमाटर उत्पादक राज्यों तथा क्षेत्रों में फैल चुका है। पॉलीहाउस में यह मोथ 100 प्रतिशत तक नुकसान पहुंचाने में सक्षम है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के वैज्ञानिकों द्वारा विकसित आईपीएम मॉड्यूल के अंतर्गत एक पीला बल्ब प्रति 150 वर्ग मीटर की दूरी पर लगाने से (इनकैनडिसेंट 60 डब्ल्यू, फेरोमोन कीटजाल प्रति 300 वर्ग मीटर) इस मोथ का आसानी से नियंत्रण किया जा सकता है। टमाटर मोथ की चरम उत्पत्ति के समय 1 मि.ली. प्रति लीटर की दर से डेल्टामेथ्रिन 2.5 ईसी का छिड़काव करना जरूरी है। विभिन्न कीटरोधकों का भी 2-3 सप्ताह के अंतराल पर छिड़काव करते रहें। इस मोथ के प्रबंधन के लिए लाइट ट्रैप आधारित आईपीएम एक प्रभावी व पर्यावरण अनुकूल उपाय हो सकता है। इस तरह से मोथ प्रबंधन के बाद टमाटर की फसल के नुकसान को 35-56 प्रतिशत से घटाकर 5-6 प्रतिशत पहुंचाया जा सकता है। ■

(स्रोतः भाकृअनुप वार्षिक रिपोर्ट 2018-19, पृष्ठ संख्या. 80)

IFFCO

पूर्णतः सहकारी स्वामित्व
Wholly owned by Cooperatives

50 1967 2017
स्वर्ण जयंती
Golden Jubilee

इफको के स्वर्णिम 50 वर्ष

कृषि, सहकारिता एवं ग्रामीण विकास को समर्पित

नीम लेपित यूरिया | एन पी के | डी ए पी | एन पी | बॉयो फर्टिलाइजर

वॉटर सोल्यूबल फर्टिलाइजर | माईक्रो न्यूट्रीएन्ट फर्टिलाइजर

Follow us :

YouTube IFFCO live
iffcolive.com

IFFCO
पूर्णतः सहकारी स्वामित्व

INDIAN FARMERS FERTILISER COOPERATIVE LIMITED

IFFCO Sadan, C-1 District Centre, Saket Place, New Delhi - 110017, INDIA
Phones : 91-11-26510001, 91-11-42592626. Website : www.iffco.coop

चने की फसल का रोगों व कीटों से बचाव

विक्रांत[1], आर.आर. सिंह[2] और **गोविन्द विश्वकर्मा[3]**
चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर-208 002 (उत्तर प्रदेश)

" दलहनी फसलों में चने का प्रमुख स्थान है। यह रबी की मुख्य फसल है। दलहनी फसलों के अंतर्गत आने वाले क्षेत्रफल का लगभग 27 प्रतिशत हिस्सा चने की खेती का है। दलहनी फसलों के उत्पादन में लगभग 33 प्रतिशत चने का योगदान होता है। इसके साथ-साथ चने की फसल में कीट एवं रोगों का अधिक प्रकोप होने के कारण भी इसकी खेती में निरंतर कमी आ रही है। उन्नत तकनीक एवं पादप संरक्षण विधियों का उचित उपयोग न करने के कारण इसकी राष्ट्रीय उत्पादकता मात्र 623 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर ही रह गई है। चने की फसल पर दुनियाभर में लगभग 60 कीट आक्रमण करते हैं। मुख्य रूप से इन कीटों एवं रोगों में फलीबेधक, कर्तन कीट, चेंपा या एफिड, दीमक व सेमीलूपर, उकठा रोग, जड़ सड़न, कॉलर सड़न, ग्रे मोल्ड एवं पत्ती झुलसा आदि चने को बहुत नुकसान पहुंचाते हैं। इस लेख में चने के कीटों व रोगों से बचाव के बारे में विशेष जानकारी दी गई है। "

चने की फसल का रबी दलहनों में महत्वपूर्ण स्थान है। बारानी पारिस्थितियों में इसकी फसल अच्छी होती है। परंतु सिंचाई सुविधाओं के बढ़ने के कारण पंजाब, हरियाणा तथा राजस्थान में चने के अंतर्गत आने वाला क्षेत्रफल सिंचित हो गया है। इस कारण इन क्षेत्रों में गेहूं व सरसों की फसल ज्यादा उगाते हैं। इस फसल को अकेले अथवा सरसों, गेहूं व जौ इत्यादि फसलों के साथ भी उगाया जा सकता है। इसकी उपज कम होने का कारण रोग एवं कीटों की समस्या है। इस समस्या के निवारण के लिए चने की फसल में एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन अपनाकर अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती है। इससे रसायनों के प्रयोग को कम करके वातावरण को दूषित होने से बचाया भी जा सकता है।

[1]शोध छात्र, कीट विज्ञान विभाग; [2]प्राध्यापक, कीट विज्ञान विभाग; [3]असिस्टेंट प्रोफेसर, दून कॉलेज ऑफ एग्रीकल्चर साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, देहरादून-248 011 (उत्तराखण्ड)

चने के प्रमुख रोग

जड़ सड़न

यह रोग मृदा से पैदा होता है और आमतौर पर अंकुरण या पौध अवस्था में ही पौधे इससे संक्रमित होते हैं। इस रोग से प्रभावित पौधे धीरे-धीरे पीले पड़ने लगते हैं और पत्तियां झुक जाती हैं। आमतौर पर अंकुरित पौधे मरते नहीं हैं। अंकुरित पौधे के मुख्य तने के कॉलर के ऊपर तक गहरा भूरा धब्बा पैदा हो जाता है। बड़े पौधों में यह धब्बा शाखाओं में फैल जाता है। तने तथा जड़ के निचले भाग सड़े हुए दिखाई देते हैं। इनके ऊपर गुलाबी रंग के कवक सूत्र और सुई की नोक के बराबर काले-काले दाने देखे जा सकते हैं।

प्रबंधन

- केवल प्रमाणित बीज व रोगरोधी किस्में ही बोनी चाहिए।
- चने के स्थान पर गेहूं और जौ की फसल दो वर्ष के अंतराल पर लेनी

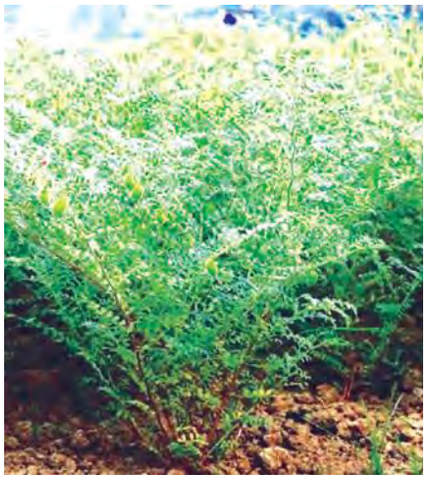

चने की फसल

चाहिए और फसल का भूसा खेत में ही छोड़ देना चाहिए।

- बीज को बोने से पहले थीरम, कैप्टॉन या पी.सी.एन.बी. से उपचारित करना चाहिए।
- रोग से प्रभावित पौधों को उखाड़कर नष्ट कर देना चाहिए।

कॉलर सड़न

भूमि में अधिक नमी की दशा और अचानक वातावरण में तापमान बढ़ने के कारण यह रोग अंकुरण की अवस्था में दिखाई देता है। यह अक्सर मृदा द्वारा ही पैदा होता है। इसमें छोटे पौधों की कोमल पत्तियां पीली पड़ जाती हैं। पौधों के कॉलर क्षेत्र में सड़न हो जाती है। सड़ा हुआ भाग सफेद कवक से ढक जाता है और इसके साथ जुड़े हुए सरसों के दाने के बराबर अनेक बीजाणु देखे जा सकते हैं। नवजात अंकुरित पौधे मर जाते हैं। इस रोग को एक ही खेत में जगह-जगह पर देखा जा सकता है।

जड़ सड़न

प्रबंधन

- केवल प्रमाणित बीज व रोगरोधी किस्में ही बोनी चाहिए।
- खेत की गहरी जुताई करनी चाहिए ताकि हानिकारक बीजाणु और सूक्ष्मजीव धूप में नष्ट हो जाएं।
- मृदा में अधिक नमी नहीं होनी चाहिए।
- बीज को बोने से पहले थीरम, कैप्टॉन या पी.सी.एन.बी. से उपचारित करना चाहिए।
- 15-20 कि.ग्रा. पी.सी.एन.बी. 15 कि.ग्रा. डेमोसन प्रति हैक्टर की दर से भूमि को उपचारित करना चाहिए।

ग्रे मोल्ड

यह रोग ज्यादातर तराई क्षेत्र और पंजाब, जहां ठंडा मौसम तथा अधिक आर्द्रता हो, वहां पाया जाता है। इसमें पौधे के तने पर मटमैले तथा गहरे भूरे धब्बे पर खड़े बाल के समान बीजाणु होते हैं। धब्बे लगभग 10-30 सें.मी. लंबे होते हैं, जो कि तने को जल्दी ही चारों ओर से घेर लेते हैं। मुलायम शाखाएं रोग से प्रभावित भाग से टूट जाती हैं।

प्रबंधन

- केवल प्रमाणित बीज व रोगरोधी किस्में ही बोनी चाहिए।
- खेत की गहरी जुताई करनी चाहिए, ताकि हानिकारक बीजाणु और सूक्ष्मजीव धूप में नष्ट हो जाएं।
- मृदा में अधिक नमी नहीं होनी चाहिए।

उकठा रोग

- फसलों के ऊपर 2 प्रतिशत डाइक्लोन के छिड़काव से इसे बचाया जा सकता है। 0.2 प्रतिशत नैबम या 0.2 प्रतिशत मैनव का 10 दिनों के अंतर पर छिड़काव लाभप्रद होता है।

फलीबेधक कीट

इस कीट का वयस्क मध्यम आकार का पीले-भूरे रंग का होता है। इसके अगले पंखों पर भूरे रंग की कई धारियां होती हैं तथा इन पर सेम के आकार के भिन्न-भिन्न नाप के काले धब्बे पाए जाते हैं। इसके निचले पंखों का रंग सफेद होता है। इनकी शिराएं स्पष्ट रूप से काली दिखायी देती हैं और उनके बाहरी किनारों पर चौड़ा धब्बा होता है। इस कीट की मादा पत्तियों की निचली सतह पर हल्के पीले रंग के खरबूजे की तरह धारियों

पत्ती झुलसा या चांदनी रोग

यह रोग प्राय: तराई क्षेत्रों और पंजाब में पाया जाता है। पत्तियों पर छोटे भूरे रंग के धब्बे पड़ जाते हैं। धब्बे, का किनारा बदरंग हो जाता है। बाद में गोल आकार में बिंदी की तरह के काले धब्बे सड़ने वाले धब्बों के चारों ओर फैल जाते हैं। पत्तियां और फूल पौधे के केवल ऊपरी भाग में ही मुरझाकर लटक जाते हैं। प्रभावित पौधों में तने तथा पत्तियों का रंग आमतौर पर सूखे पौधों की तरह हो जाता है। मरे हुए तने और जड़ भंगुर हो जाते हैं और छाल कटी-फटी दिखाई देती है।

प्रबंधन

- केवल प्रमाणित बीज व रोगरोधी किस्में ही बोनी चाहिए।
- खेत की गहरी जुताई करनी चाहिए, ताकि बीजाणु और सूक्ष्मजीव धूप में नष्ट हो जाएं।
- रोग से प्रभावित पौधों को उखाड़कर नष्ट कर देना चाहिए।
- फसल के ऊपर 0.2 प्रतिशत कैप्टॉन या डाइथेन जेड-78 का छिड़काव करना चाहिए।

फलबेधक सूंडी

वाले अंडे देती हैं। एक मादा अपने जीवनकाल में लगभग 500-1000 तक अंडे देती है। ये अंडे 3 से 10 दिनों के अंदर फूट जाते हैं और इनसे चमकीले हरे रंग की सूंडियां निकलती हैं। प्रारंभिक अवस्था की सूंडी मुख्यत: चने की पत्तियों, कलियों तथा फूलों को खाती है। बाद में सूंडी विकसित हो रही चने की फली के अंदर घुसकर दानों को खा जाती है तथा फली खोखली होने पर पीली पड़कर सूख जाती है, जिससे पैदावार पर सीधा प्रभाव पड़ता है। खाते समय इसकी सूंडी का पीछे का आधा भाग फली के बाहर रहता है या प्रारंभ में पूरी सूंडी फली के अंदर घुस जाती है।

उकठा रोग

यह रोग आमतौर पर बुआई के लगभग तीन सप्ताह बाद दिखाई देता है और दाने पकने तक कभी भी पौधों को नुकसान पहुंचा सकता है। इस रोग से ग्रसित होने पर प्रारंभ में पत्तियां पौधों के ऊपरी भाग से मुरझाकर नीचे लटक जाती हैं। पत्तियों में हरे रंग का अभाव होना शुरू हो जाता है, जिससे पहले पत्तियां पीली और बाद में काले रंग की हो जाती हैं। कभी-कभी पूर्ण पौधा प्रभावित न होकर आंशिक रूप से प्रभावित होता है और पौधे की बढ़वार रुक जाती है।

प्रबंधन

- केवल प्रमाणित बीज व रोगरोधी किस्में ही बोनी चाहिए।
- खेत की गहरी जुताई करनी चाहिए ताकि हानिकारक बीजाणु और सूक्ष्मजीव धूप में नष्ट हो जाएं।
- बुआई से पूर्व बीजों को बाविस्टीन और थीरम 1:1 की 2.5 ग्राम मात्रा से एक कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करना चाहिए। यदि राइजोबियम कल्चर उपलब्ध हो तो पहले 0.1 प्रतिशत बाविस्टीन से उपचारित कर लेना चाहिए।
- रोग से प्रभावित पौधों को उखाड़कर नष्ट कर देना चाहिए।
- सिंचाई वाले क्षेत्र में दो-तीन वर्ष के अंतराल पर चने के स्थान पर गेहूं और सरसों की फसल लेनी चाहिए।

दीमक

दीमक फसलों को हानि पहुंचाने वाले सामान्य कीट की श्रेणी में आती है। सामान्यत: यह मुख्य हानिकारक कीट के अंतर्गत नहीं आती, लेकिन बारानी अवस्थाओं में इसका प्रकोप अधिक देखा गया है। दीमक मुख्यत: मृतजीवी पादप पदार्थों पर ही अपना जीवनयापन करती है। लेकिन भोज्य पदार्थ की कमी होने के समय में ये सजीव पौधों की जड़ों से अपना भोजन लेना आरंभ कर देती है। श्रमिक दीमक सजीव पौधों से ही अपना भोजन ग्रहण करती है। ये पौधों के तनों के सहारे सुरंग बनाकर पौधों की जड़ों तक पहुंचकर उन्हें हानि पहुंचाती हैं।

इस कारण पौधे मुरझाना शुरू हो जाते हैं और अंत में सूख जाते हैं। दीमक से प्रभावित पौधा आसानी से हाथों से खींचने से उखड़ जाता है। सूखा पड़ने की स्थिति में दीमक का प्रकोप खड़ी फसल में अधिक देखा गया है।

प्रबंधन

- प्रभावित खेत में सिंचाई समय-समय पर करते रहें।
- खेत में हमेशा गोबर की सड़ी हुई खाद का प्रयोग करें।
- एक कि.ग्रा. बिवेरिया तथा एक कि.ग्रा. मेटारिजियम को लगभग 25 कि.ग्रा. गोबर की सड़ी हुई खाद में अच्छी तरह मिलाकर छाया में 10 दिनों के लिए छोड़ दें। प्रभावित खेत में प्रति एकड़ बुआई से पूर्व इसका प्रयोग करें।
- सिंचाई के समय इंजन से निकले हुए तेल की 2-3 लीटर मात्रा का प्रयोग करें।
- प्रकोप अधिक होने पर क्लोरोपाइरीफॉस 20 ई.सी. की 3-4 लीटर मात्रा को बालू रेत में मिलाकर प्रति हैक्टर प्रयोग करें।
- चने के बीज को बुआई से पूर्व इमिडाक्लोप्रिड 70 डब्ल्यूएस 0.1 प्रतिशत से उपचारित करना चाहिए।

प्रबंधन

- खेतों की ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई करनी चाहिए। इससे प्यूपा ऊपर आ जाते हैं, जिन्हें प्राकृतिक शत्रु खा जाते हैं। जुताई सुबह के समय ज्यादा उपयुक्त होती है।
- फसल चक्र में अरहर, कपास, आदि फसलें न रखें।
- सूंडीग्रसित फलियों को तोड़कर नष्ट कर देना चाहिए।
- खेत में 20 फेरोमोन ट्रैप प्रति हैक्टर की दर से लगाएं।

ग्रे मोल्ड

- खेत में परजीवी पक्षियों के बैठने के लिए 10 ठिकाने प्रति हैक्टर लगाएं।
- सूंडी की प्रथमावस्था दिखाई देते ही 250 एलई एचएएनपीवी के एक कि.ग्रा. गुड़ तथा 0.1 प्रतिशत टीपोल के घोल का प्रति हैक्टर की दर से 10-12 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करें।
- इसके अतिरिक्त 1 कि.ग्रा. बीटी का प्रति हैक्टर प्रयोग करें।
- इसके बाद 5 प्रतिशत एनएसकेई का छिड़काव करें।
- प्रकोप बढ़ने पर इंडोसल्फान 35 ई.सी. या क्विनॉलफॉस 25 ई.सी. या क्लोरोपायरीफॉस 20 ई.सी. का 2 मि.मी. प्रति लीटर या इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एसएल का एक मि.मी. प्रति लीटर की दर से छिड़काव करें।
- स्पाइनोसैड 45 एससी व थायोमेंक्जाम 70 डब्ल्यूएससी का एक मि.मी. प्रति लीटर प्रयोग करें।

कर्तन कीट का वयस्क व सूंडी

कर्तन कीट

यह कीट चने के अलावा सोलेनियसी परिवार के पौधों तथा कपास एवं दलहनी फसलों पर भी आक्रमण करता है। इस कीट की मादा रात के वातावरण में पत्तियों पर अंडे देती है। इनकी जीवन चक्र क्रिया एक-दो महीने में पूरी होती है। इसकी सूंडी जमीन में चने के पौधे के पास मिलती है तथा 30-35 दिनों की फसल में जमीन की सतह से पौधे और इसकी शाखाओं को काटती है।

प्रबंधन

- खेतों के पास प्रकाश प्रपंच 20 फेरोमोन ट्रैप प्रति हैक्टर की दर से लगाकर वयस्क कीटों को आकर्षित करके नष्ट किया जा सकता है।
- खेतों के बीच-बीच में घासफूस के छोटे-छोटे ढेर शाम के समय लगा देने चाहिए। रात्रि में जब सूंडियां खाने को निकलती हैं, तो बाद में इन्हीं में छिपती हैं। इन्हें घास हटाने पर आसानी से नष्ट किया जा सकता है।
- प्रकोप बढ़ने पर इंडोसल्फान 35 ई.सी. (1.50-2.0 मि.ली. प्रति लीटर) या क्लोरोपायरीफॉस 20 ई.सी. एक लीटर प्रति हैक्टर या नीम का तेल 3 प्रतिशत की दर से छिड़काव करें।

सेमीलूपर कीट

सेमीलूपर

इस कीट की सूंडियां हरे रंग की होती हैं, जो पीठ को ऊपर उठाकर अर्थात अर्धलूप बनाती हुई चलती हैं, इसलिए इसे सेमीलूपर कहा जाता है। यह पत्तियों को कुतरकर खाती है। एक मादा अपने जीवनकाल में 400-500 तक अंडे देती है। अंडों से 6-7 दिनों में सूंडियां निकलती हैं, जो 30-40 दिनों तक सक्रिय रहकर पूर्ण विकसित हो जाती हैं। पूर्ण विकसित सूंडियां पत्तियों को लपेटकर उन्हीं के अंदर प्यूपा बनाती हैं। इनसे एक-दो सप्ताह बाद सुनहरे रंग का पतंगा बाहर निकलता है।

प्रबंधन

- खेतों की ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई करनी चाहिए और रोग व कीट प्रतिरोधी प्रजातियों की बुआई करनी चाहिए।
- बीज को कीटनाशी व फफूंदनाशकों से उपचारित करना चाहिए।
- खेत में 20 फेरोमोन ट्रैप प्रति हैक्टर की दर से लगाएं।
- खेत में परजीवी पक्षियों के बैठने के लिए 10 ठिकाने प्रति हैक्टर लगाएं।
- प्रकोप बढ़ने पर इंडोसल्फान 35 ई.सी. (1.50-2.0 मि.ली. प्रति लीटर) या क्लोरोपायरीफॉस 20 ई.सी. एक लीटर प्रति हैक्टर या नीम के तेल का 3 प्रतिशत की दर से छिड़काव करें। ■

शून्य जुताई विधि से गेहूं बुआई लागत में कमी

कमलेश मीना[1], रजनीश श्रीवास्तव[1], अनुराधा रंजन कुमारी[1], अजय तिवारी[1], अजय कुमार[2], नीरज सिंह[3], आर.एन. प्रसाद[3] और **बिजेन्द्र सिंह[4]**

"कृषि में बढ़ती लागत के कारण किसानों के लिए गेहूं की खेती करना वर्ष दर वर्ष मुश्किल होता जा रहा है। ऐसे में किसानों को चाहिए कि वे शून्य जुताई विधि द्वारा गेहूं की बुआई करें। इस विधि से बुआई करने पर लगभग 5000-5500 रुपये की प्रति एकड़ बचत के साथ-साथ अच्छी पैदावार भी प्राप्त की जा सकती है। यह विधि किसानों की आय बढ़ाने में मददगार है।"

चावल एवं गेहूं हमारे देश का ही नहीं बल्कि विश्व की अधिकांश आबादी का मुख्य आहार है। आज कृषि में बढ़ती लागत को देखते हुए किसानों के लिए धान-गेहूं की खेती करना वर्ष दर वर्ष मुश्किल होता जा रहा है। किसान इन फसलों को घाटे की फसल मान रहे हैं और उनका रुझान इन फसलों के प्रति कम होता जा रहा है। इसलिए समय रहते प्रभावी रणनीति बनाने के साथ-साथ संसाधन संरक्षण तकनीकों को अपनाना अति आवश्यक हो गया है। खाद्यान्न फसलों की खेती के लिए संसाधनों का संरक्षण तथा संरक्षित खेती ही भविष्य में बढ़ती हुई खाद्य की मांग को पूरा करते हुए पर्यावरण एवं मृदा के स्वास्थ्य के लिए प्रभावी तरीका है। इसके द्वारा निवेश उपयोग दक्षता एवं किसानों की आमदनी को बढ़ाया जा सकता है। उचित जल प्रबंधन से फसलों की पैदावार में सुधार, मृदा पुनर्निर्माण, जैव विविधता तथा प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण किया जा सकता है। संसाधन संरक्षण तकनीकियों में से शून्य जुताई विधि द्वारा गेहूं की बुआई भी एक अच्छी

[1]भाकृअनुप-भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, कृषि विज्ञान केन्द्र, मल्हना, देवरिया (उत्तर प्रदेश); [2]सीसा परियोजना, हब गोरखपुर (उत्तर प्रदेश); [3]प्रधान वैज्ञानिक, [4]पूर्व निदेशक, भाकृअनुप-भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी (उत्तर प्रदेश)

तकनीक है। इस विधि के द्वारा गेहूं की बुआई करने पर लगभग 5,000-5,500 रुपये प्रति एकड़ की बचत के साथ-साथ अच्छी पैदावार भी प्राप्त की जा सकती है। इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण कृषि में आवश्यक महत्वपूर्ण संसाधनों की भी बचत की जा सकती है।

उत्तर प्रदेश के देवरिया जनपद में धान-गेहूं पर आधारित फसल पद्धति मुख्य रूप से प्रचलित है। किसानों द्वारा लगभग 80 प्रतिशत क्षेत्रफल में गेहूं की बुआई की जाती है। यहां गेहूं के अतिरिक्त चना, सरसों, मसूर और मटर इत्यादि फसलों को किसान उगाते हैं। यहां पर किसानों द्वारा गेहूं एवं अन्य फसलों की बुआई का मुख्य तरीका केवल छिटकवां विधि ही रही है। कृषि विज्ञान केन्द्र (भाकृअनुप-भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान) मल्हना, देवरिया की स्थापना एवं सीसा परियोजना के आने के बाद यहां की स्थिति में बदलाव आया है। सन् 2009 में कुछ प्रगतिशील किसानों को लेकर किए गए सर्वे से ज्ञात हुआ कि इस जनपद में केवल दो शून्य जुताई मशीनें ही किसानों के पास थीं। शून्य जुताई के अंतर्गत क्षेत्रफल भी लगभग नहीं के बराबर था और किसानों की औसत उपज लगभग 30 क्विंटल/हैक्टर के आसपास थी। आज स्थिति यह है कि यहां पर 58 शून्य जुताई मशीनें और 4 हैप्पी सीडर किसानों के पास गेहूं की बुआई के लिए उपलब्ध हैं। सन् 2016-17 में शून्य जुताई के अंतर्गत क्षेत्रफल बढ़कर 698 हैक्टर के लगभग हो गया। इसके साथ ही शून्य जुताई विधि द्वारा बुआई करने वाले किसानों की औसत उपज लगभग 50 क्विंटल प्रति हैक्टर के आसपास पहुंच गई।

देवरिया जिले का सर्वेक्षण

कृषि विज्ञान केन्द्र की स्थापना सन् 2009 में भाकृअनुप-भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी के प्रशासनिक नियंत्रण में हुई। उसी समय इस जिले में सीसा परियोजना का भी शुभारंभ हुआ। इस जिले में कृषि विज्ञान केन्द्र एवं सीसा परियोजना के द्वारा 2009 के रबी मौसम में गेहूं की शून्य जुताई विधि पर काम करना प्रारंभ किया गया। शुरुआत में गेहूं की बुआई का सर्वेक्षण किया गया। जिसमें जनपद के 16 विकास खंडों के लगभग 100 प्रगतिशील किसानों को शामिल किया गया। सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ कि जिले में लगभग 80 प्रतिशत क्षेत्रफल में गेहूं की बुआई की जाती है। किसानों में गेहूं की बुआई के लिए मुख्य रूप से छिटकवां विधि का ही प्रचलन था। शून्य जुताई विधि द्वारा बुआई के अंतर्गत क्षेत्रफल नहीं के बराबर था। इस जिले के किसानों से जानकारी जुटाने पर ज्ञात हुआ कि बुआई के लिए 2 सीडड्रिल हैं। इनका भी जानकारी के अभाव में कम प्रयोग किया जाता है। यह भी पता चला कि जिले में गेहूं की औसत उपज लगभग 30 क्विंटल/हैक्टर के आसपास है।

शून्य जुताई विधि की वर्तमान स्थिति एवं संभावनाएं

प्रशिक्षण के सात वर्ष बीत जाने के बाद पुनः सर्वेक्षण किया गया तो पता चला कि देवरिया जनपद के 16 विकास खंडों के 52 गांवों में लगभग 698 हैक्टर क्षेत्रफल में शून्य जुताई विधि द्वारा गेहूं की बुआई की जाती है। वर्तमान में जनपद में 58 शून्य जुताई मशीनें एवं 4 हैप्पी सीडर किसानों के यहां उपलब्ध हैं।

सारणी 1. शून्य जुताई विधि एवं छिटकवां विधि का अनुमानित लागत के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन

जुताई क्रियाएं	गेहूं में खर्च (रुपये/एकड़)	
	शून्य जुताई विधि	छिटकवां विधि
धान कटाई के बाद जुताई	0 (शून्य)	900 रुपये (600 रुपये प्रति बीघा)
बुआई से पूर्व एक सिंचाई	0 (शून्य)	1350 रुपये (9 घंटा प्रति एकड़ एवं 150 रुपये प्रति घंटा)
सिंचाई के लिए मजदूरी	0 (शून्य)	350 रुपये (प्रतिदिन)
सिंचाई के बाद जुताई	0 (शून्य)	1800 रुपये (900 रुपये प्रति जुताई)
बीज दर (कि.ग्रा./एकड़)	1200 रुपये (40 कि.ग्रा. बीज)	1800 रुपये (60 कि.ग्रा. बीज)
बीज व उर्वरकों के छिड़काव के लिए मजदूरी	0	350 रुपये (प्रतिदिन)
मशीन/कल्टीवेटर से बुआई	1500 रुपये प्रति एकड़	900 रुपये प्रति एकड़
फसल में उर्वरकों का प्रयोग	2000 रुपये प्रति एकड़	2000 रुपये प्रति एकड़
गेहूं में सिंचाई (तीन सिंचाई)	4050 रुपये (27 घंटे × 150 रुपये प्रति घंटा)	4725 रुपये (31.5 घंटे × 150 रुपये प्रति घंटा)
तीन सिंचाइयों के लिए मजदूरी	1,181 रुपये	1378 रुपये
कुल लागत	9,931 रुपये	15,553 रुपये

शून्य जुताई विधि से गेहूं की बुआई

वर्ष 2009-10 में शून्य जुताई विधि पर अग्रिम पंक्ति प्रदर्शन लगाने की योजना बनाई गई। योजना के प्रथम चरण में कृषि विज्ञान केन्द्र के सस्य विज्ञान विशेषज्ञों ने 20-25 किसानों को गेहूं की शून्य जुताई विधि द्वारा बुआई पर प्रशिक्षण दिया। प्रथम वर्ष गेहूं की शून्य जुताई विधि द्वारा बुआई के लिए केन्द्र के पास के 3 गांवों-जसूई, छोटका एवं केहूनिया के किसानों का चयन किया गया। प्रथम चरण में चयनित किसानों को कृषि विज्ञान केन्द्र द्वारा प्रदर्शन के लिए

शून्य जुताई विधि से गेहूं की अधिक पैदावार

सारणी 2. शून्य जुताई एवं छिटकवां विधि का अन्य मापदंडों के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन

क्र.सं.	मापदंड	शून्य जुताई विधि	छिटकवां विधि
1	उत्पादन लागत	शून्य जुताई के कारण लागत कम	अधिक
2	श्रम, समय एवं पानी की आवश्यकता	कम	अधिक
3	बीज की मात्रा	40 कि.ग्रा. प्रति एकड़	60 कि.ग्रा. प्रति एकड़
4	बीज की गहराई	3 से 4 सें.मी. या निश्चित गहराई	अनिश्चित गहराई
5	उर्वरकों का उपयोग	निश्चित स्थान पर	अनिश्चित स्थान पर
6	खरपतवारों का जमाव	शून्य जुताई के कारण जमाव कम	जमाव अधिक
7	कल्लों की संख्या	अधिक	कम
8	तेज हवा चलने पर फसल की स्थिति	फसल का कम नुकसान	फसल गिर जाती है।
9	बाली में दानों की संख्या	अधिक (60-65)	अपेक्षाकृत कम (50-55)
10	उत्पादन प्रति हैक्टर	अधिक (45-55 क्विंटल)	कम (40-45 क्विंटल)
11	मृदा की उर्वराशक्ति	धान के अवशेषों के सड़ने गलने से उर्वराशक्ति में सुधार	मृदा की उर्वराशक्ति का ह्रास

सारणी 3. वर्ष 2009 से 2016 तक लगाये गए प्रदर्शन व स्थानीय विधि का उत्पादन, क्षेत्रफल, किसानों की संख्या एवं गांवों की संख्या का विवरण

वर्ष	अग्रिम पंक्ति प्रदर्शन के अंतर्गत क्षेत्रफल (हैक्टर)	किसानों की संख्या	गांवों की संख्या	औसत उपज (क्विंटल/हैक्टर)	
				अग्रिम पंक्ति प्रदर्शन	स्थानीय तकनीक
2009-2010	6	15	03	36.4	32.8
2010-2011	15.76	44	08	39.8	33.6
2011-2012	8.6	19	05	39.65	38.5
2012-2013	11.5	32	08	40.3	38.1
2013-2014	14.68	39	06	44.8	37.4
2014-2015	09	27	08	50.4	38.6
2015-2016	05	13	04	50.8	39.0

सारणी 4. वर्ष 2009 से 2016 तक जनपद में शून्य जुताई विधि के अंतर्गत क्षेत्रफल, मशीनों की संख्या एवं गांवों की संख्या का विवरण

वर्ष	शून्य जुताई विधि के अंतर्गत क्षेत्रफल (हैक्टर)	गांवों की संख्या	मशीनों की संख्या
2009-2010	0	02	02
2010-2011	44.6	07	08
2011-2012	120.8	16	14
2012-2013	276.2	28	22
2013-2014	390.8	34	35
2014-2015	484.8	46	41
2015-2016	698	52	58

बीज एवं सीसा परियोजना के द्वारा शून्य जुताई मशीन उपलब्ध कराई गई। इससे कुल 15 किसानों के प्रक्षेत्र पर 6 हैक्टर क्षेत्रफल में अग्रिम पंक्ति प्रदर्शन लगाया गया। प्रदर्शन लगाने के दौरान कई किसानों द्वारा इस विधि का विरोध किया गया। किसानों का कहना था कि गेहूं की अच्छी पैदावार के लिए खेत की जुताई अच्छी तरह करनी चाहिए एवं किसानों ने पुरानी कहावत 'गेहूं की अच्छी पैदावार के लिए खेत की उतनी जुताई की जाये ताकि पानी से भरा मटका खेत में डालने पर टूटे नहीं' का भी स्मरण करवाया। कृषि वैज्ञानिकों ने अपना काम जारी रखा और इस विधि का प्रचार-प्रसार करने के लिए किसानों को प्रशिक्षण देते रहे। गेहूं के जमाव के बाद किसानों को प्रक्षेत्रों का भ्रमण कराया गया एवं प्रक्षेत्र दिवस का भी आयोजन किया गया।

तुलनात्मक अध्ययन

तुलनात्मक अध्ययन करने पर पाया गया कि छिटकवां विधि से बुआई करने पर शून्य जुताई विधि की अपेक्षा लगभग 5,000 से 5,500 रुपये प्रति एकड़ अधिक खर्च आता है, जबकि पैदावार शून्य जुताई विधि में अधिक है। धान की कटाई के पश्चात खेत में उपस्थित नमी का उपयोग करते हुए हैप्पी सीडर अथवा शून्य जुताई मशीन के द्वारा बुआई करने पर पानी की बचत के साथ-साथ समय की भी बचत होती है। धान-गेहूं पर आधारित फसल पद्धति में धान की कटाई के बाद गेहूं की बुआई समय पर करना किसानों के लिए काफी मुश्किल काम था। अब किसानों की जागरूकता और इन विशेषज्ञों के प्रयास एवं किसानों की कड़ी मेहनत ने राह को आसान बना दिया है। शून्य जुताई विधि एवं छिटकवां विधि के महत्व का तुलनात्मक अध्ययन सारणी-1 व 2 में दिया गया है।

शून्य जुताई विधि से गेहूं की बुआई के परिणाम

प्रथम वर्ष जो परिणाम सामने आये उसे देखकर किसान काफी खुश हुए। प्रथम वर्ष में प्रदर्शन की औसत उपज 36.4 क्विंटल/हैक्टर एवं स्थानीय (छिटकवां) विधि की औसत उपज 32.8 क्विंटल/हैक्टर प्राप्त हुई। स्थानीय विधि (छिटकवां) की उपज प्रदर्शन की अपेक्षा 3.6 क्विंटल/हैक्टर कम थी, जो किसानों को प्रभावित करने के लिए काफी थी। वर्ष 2009 से 2016 तक यही सिलसिला लगातार चलता रहा और रबी 2015-16 में लगाये गए प्रदर्शन की औसत उपज 50.8 क्विंटल/हैक्टर एवं स्थानीय विधि की औसत उपज 39 क्विंटल/हैक्टर प्राप्त की गई।

आने वाले वर्षों में यदि इसी प्रकार देश के कृषि विशेषज्ञों एवं किसानों के बीच संसाधन संरक्षण की तकनीकियों को लेकर तालमेल बना रहा तो शून्य जुताई विधि द्वारा धान-गेहूं के अलावा दलहन, तिलहन और अन्य फसलों में भी इसकी लोकप्रियता को बढ़ाया जा सकता है। इस प्रकार उत्पादन लागत में कमी लायी जा सकती है, जिससे किसानों की आय बढ़ाने में काफी मदद मिलेगी।

लवणग्रस्त मृदा में बाजरे की उन्नत खेती

बाबू लाल मीणा, रामेश्वर लाल मीणा, प्रवीण कुमार और **अश्वनी कुमार**
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)

" वर्तमान में बाजरे का उत्पादन 87.9 लाख टन एवं उत्पादकता 1106 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर है। बाजरे का लगभग 90 प्रतिशत क्षेत्रफल, राजस्थान, महाराष्ट्र, गुजरात, उत्तर प्रदेश एवं हरियाणा के अंतर्गत आता है। भारत में इस फसल का उपयोग मुख्यत: दाने एवं चारे के रूप में होता है। वर्तमान में इन राज्यों में लवणता एवं क्षारीयता की समस्या कृषि के विकास के लिए एक गंभीर चुनौती बन गई है। देश में लगभग 6.73 मिलियन हैक्टर भूमि बंजर है, जिसमें 3.77 मिलियन हैक्टर ऊसर (क्षारीयता) एवं 2.96 मिलियन हैक्टर भूमि लवणता से ग्रसित है। क्षारीय भूमि में प्राकृतिक तौर पर कुछ पोषक तत्वों (जिंक व आयरन) की प्रचुर मात्रा होते हुए भी ये पौधों को आसानी से उपलब्ध नहीं हो पाते हैं। "

भारत की खाद्य सुरक्षा के लिये अनिवार्य फसलों-गेहूं एवं धान के अलावा बाजरा, शुष्क, लवणीय एवं कम वर्षा वाले क्षेत्रों की प्रमुख फसल है।

देश में बाजरा की खेती वर्ष 2013-14 में 79.5 लाख हैक्टर क्षेत्रफल में सिंचित व असिंचित दोनों अवस्थाओं में की गई। लवण प्रभावित मृदाओं के सुधार व प्रबंधन के लिए इनकी उचित पहचान करना आवश्यक है। सही पहचान के बाद ही इनके सुधार के लिए उचित उपचार की सिफारिश की जा सकती है। लवणीय भूमि की सतह पर सफेद लवण पपड़ी का जमाव ऐसी मृदाओं को पहचानने में सहायक होता है। इसी कारण से ऐसी मृदाओं को सफेद कल्लर भी कहा जाता है। कभी-कभी लवण की कमी से पौधों की पत्तियों के अग्र सिरों के जलने और पत्तियों की हरिमाहीनता (हल्का पीला रंग) से भी इसकी पहचान की जा सकती है। लवणता अधिक होने पर ये मृदाएं वातावरण से वाष्प सोखने के कारण गीली-गीली लगती हैं, जबकि इनमें पौधों के लिए पर्याप्त जल नहीं होता है। क्षारीय मृदाएं जिन खेतों में पाई जाती हैं, उनके निचले भागों में सिंचाई अथवा वर्षा के उपरांत लंबे समय तक जल भराव रहता है। सतह से कुछ सें.मी. नीचे यह मृदा जल से भीगी हो सकती है, परंतु फिर भी इनकी सतह शुष्क तथा कठोर दिखाई देती है। इसके विपरीत सतह भीगी हो सकती है और कुछ सें.मी. नीचे की मृदा सूखी भी हो सकती है। सूखने पर क्षारीय मृदा में 1 से 2 सें.मी. चौड़ी और कई सें.मी. गहरी दरारें पड़ जाती हैं, जो गीली होने पर भर जाती

हैं। खेतों में मृदाओं की पहचान करके भी क्षारीय व लवणीय मृदाओं का वर्गीकरण किया जा सकता है। लेकिन सही वर्गीकरण के लिए यह आवश्यक है कि मृदा के नमूने लिए जाएं तथा प्रयोगशाला में विश्लेषण के बाद ही मृदाओं का वर्गीकरण किया जाए। लवण प्रभावित मृदाओं में बाजरे का समुचित उत्पादन प्राप्त करने के लिए उन्नत कृषि तकनीकियों जैसे-किस्म का चुनाव, खेत की तैयारी, पोषक तत्वों का प्रबंधन, सिंचाई प्रबंधन इत्यादि को अपनाया जा सकता है, जिनका विवरण निम्नलिखित है:

अधिक उपज वाली किस्में

लवणग्रस्त मृदाओं में अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए भूमि एवं जलवायु की स्थिति के अनुसार किस्म का चुनाव करना अति आवश्यक है। बाजरा उत्पादन करने वाले क्षेत्रों के लिए उन्नत प्रमुख संकर किस्मों की सूची सारणी-1 में दी गई है। शुष्क क्षेत्रों के लिए अनुमोदित की गई किस्में लवणग्रस्त मृदाओं में भी काफी हद तक अच्छी उपज देती हैं।

खेत की तैयारी

लवणीय भूमि वाले खेत से पानी भरकर घुलनशील लवणों को पौधों के जड़ क्षेत्र से निक्षालित किया जा सकता है। पानी के निकास का भी उचित प्रबंध होना चाहिए। फसल बोने से पहले उच्च क्षारीय मृदा के नमूने की जांच के आधार पर आवश्यक मात्रा में जिप्सम मिला देनी चाहिए। खेत की तैयारी इस प्रकार करनी चाहिए कि पूर्व फसल के अवशेष एवं अवांछित खरपतवार अच्छी तरह मृदा के नीचे दब जाएं एवं मृदा भुरभुरी हो जाए। अब मृदा पलटने वाले हल से एक गहरी जुताई करनी चाहिए। उसके बाद डिस्क द्वारा 2-3 जुताई की जा सकती है।

जलभराव से उत्पन्न क्षारीय मृदा

खरपतवार नियंत्रण

अच्छी पैदावार व लवणों के ऊपरी सतह पर न आने के लिए समय से खरपतवार नियंत्रण अति आवश्यक है, अन्यथा उपज में 50 प्रतिशत तक की कमी हो सकती है। बुआई से 30 दिनों तक खेत को खरपतवारमुक्त रखना जरुरी है। खरपतवार नियंत्रण के लिए बुआई के 15 दिनों बाद खुरपी द्वारा पहली निराई करनी चाहिए। इसे 15 दिनों के अंतराल पर दोहराना चाहिए। यदि फसल की बुआई मेड़ पर की गई है, तो खरपतवार नियंत्रण ट्रैक्टर एवं रिज मेकर द्वारा भी किया जा सकता है। अगर श्रमिकों की कमी है, तो खरपतवारनाशक एट्राजिन एक कि.ग्रा. सक्रिय तत्व प्रति हैक्टर की दर से बुआई के तुरंत बाद अथवा 1-2 दिनों बाद प्रयोग करने से खरपतवार नियंत्रण किया जा सकता है। एट्राजिन 0.5 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व को 800 लीटर पानी में घोलकर भी छिड़काव किया जा सकता है।

खेत से अतिरिक्त जल निकासी एवं लवणों के निक्षालन के लिए खेत का समतल होना अति आवश्यक है।

बुआई का समय

खेत में बुआई के समय पर्याप्त नमी होनी चाहिए। बारानी अथवा असिंचित क्षेत्रों में मानसून की पहली वर्षा के बाद खेत में पर्याप्त नमी होने पर बुआई करनी चाहिए। सिंचित क्षेत्रों में जुलाई के प्रथम पखवाड़े तक बाजरे की बुआई की जा सकती है।

बीज की मात्रा एवं बीजोपचार

लवण प्रभावित मृदाओं में बीज की मात्रा सामान्य मृदा की अपेक्षा 25 प्रतिशत अधिक रखनी चाहिए। बीज दर, प्रजाति की अंकुरण क्षमता, 1000 दानों का भार एवं पौधों की संख्या प्रति हैक्टर क्षेत्र पर निर्भर करती है। बाजरे की फसल में बीज की मात्रा 3-5 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर प्रयोग की जाती है। बीजजनित रोगों एवं कीटों की रोकथाम के लिए बीज का उपचार आवश्यक है। विशेषत:

सारणी 1. लवणीय एवं सूखाग्रस्त मृदाओं के लिए बाजरा की प्रमुख किस्में

उन्नत किस्में	दाने की औसत उपज (क्विं./है.)	उगने की उपयुक्त स्थिति	अनुमोदन वर्ष	प्रमुख विशेषताएं
एच.एच.बी.-60	32.5	उच्च	1988	यह 74-75 दिनों में पकती है। डाउनी मिल्ड्यू, सूखा और लवण प्रतिरोधी है। अधिक उत्पादन व अच्छी गुणवत्ता का चारा देती है।
एच.एच.बी.-67	31.0	जल्दी व देरी से बुआई	1990	यह अल्प अवधि यानी कि 60-62 दिनों में पकती है। डाउनी फफूंदी, सूखा और लवण प्रतिरोधी है। अंत: फसलीकरण से भी अच्छी पैदावार ले सकते हैं।
एच.एच.बी.-147	37.5	जल्दी रोपण के लिए	2003	यह 70-80 दिनों में पकती है। डाउनी मिल्ड्यू, फफूंदी, सूखा और लवण प्रतिरोधी है। उच्च अनाज, चारा उत्पादकता और उर्वरक के प्रति संवेदनशील।
एच.एच.बी.-197	35.0	सिंचित व बारानी स्थिति	2007	यह 65-70 दिनों में पकती है। पुष्पगुच्छ रोएंदार होते हैं। डाउनी मिल्ड्यू, सूखा और लवण प्रतिरोधी है।
एच.एच.बी.-226	44.0	सिंचित व बारानी स्थिति	2011	उच्च उपज क्षमता, डाउनी मिल्ड्यू, फफूंदी व सूखे के लिए प्रतिरोधी। बालियों के भूरे लंबे बाल, पकने पर हरे रंग का बने रहना।
एच.एच.बी.-234	31.0	सिंचित व बारानी स्थिति	2013	यह किस्म 70-75 दिनों में पकती है। यह सूखा प्रतिरोधी है।

बाजरे की भरपूर फसल

उन क्षेत्रों में जहां डाउनी मिल्ड्यू होने की आशंका हो, बीज को मेटाक्लेजाइल (6 ग्राम/कि.ग्रा. बीज) से उपचारित करना चाहिए।

बिजाई का तरीका

अधिक उपज प्राप्त करने के लिए बाजरे की बुआई कतारों में मेड़ पर करनी चाहिए। कतार से कतार की दूरी 45-60 सें.मी. एवं पौधे से पौधे की दूरी 12-15 सें.मी. रखनी चाहिए। खेत में पौधों की संख्या 18 पौधे प्रति वर्गमीटर होनी चाहिए। यदि खेत में अच्छा जल निकास हो तो मेड़ पर बुआई न करके सीधे खेत में कर सकते हैं।

खाली जगह भरना

लवणीय भूमि में बिजाई के लगभग तीन सप्ताह बाद किसी वर्षा वाले दिन खाली स्थानों की पूर्ति की जा सकती है, क्योंकि खेत में कई जगहों पर अधिक लवणों के कारण बीज अंकुरित नहीं होते हैं। कतारों में जहां आवश्यकता से अधिक पौधे हों, उनको उखाड़कर खाली जगहों में इनकी रोपाई इस प्रकार से करनी चाहिए कि कतारों में पौधे से पौधे की दूरी 12 सें.मी. रहे।

रोपाई

बाजरे की बिजाई का सबसे अच्छा समय 1 से 15 जुलाई है। साधारण अवस्था में बाजरे की रोपाई की सिफारिश नहीं की जाती, परंतु कुछ परिस्थितियों में जैसे-अधिक लवणों के कारण कुछ बीजों का अंकुरित न होना, वर्षा का समय पर न होना या लगातार होते रहना आदि में पछेती अवस्था में रोपाई की जाती है।

पौध रोपने का तरीका

खेत में किसी वर्षा वाले दिन पौध को उखाड़कर लगाना अच्छा रहता है। पौध को 45 सें.मी. के अंतर पर कतारों में रोपें व पौधों में फासला 12 सें.मी. रखें। चार सप्ताह की दो पौध एक स्थान (हिल) पर रोपें। वर्षा न हुई हो तो हल्की सिंचाई कर देनी चाहिए। नाइट्रोजन की आधी मात्रा पौध लगाने के 10 दिनों बाद देनी चाहिए और अगर हो सके तो खाद को मृदा में अच्छी तरह मिलाने के लिए एक गुड़ाई कर देनी चाहिए। इससे मृदा ढीली हो जाएगी और उसमें वायु संचार अच्छा होगा व लवणों का उपर की ओर आना भी रुक जाएगा। नाइट्रोजन की शेष मात्रा उस समय डालें, जब फसल घुटने की ऊंचाई की हो जाए। मध्य-अगस्त तक पैदावार में बिना गिरावट के रोपाई की जा सकती है।

उर्वरक प्रयोग विधि

उर्वरकों का प्रयोग करने से पहले मृदा की जांच करवानी चाहिए। उर्वरकों की मात्रा सिंचित एवं असिंचित क्षेत्रों के लिए अलग-अलग होती है। सिंचित क्षेत्रों में नाइट्रोजन 80-100 कि.ग्रा., फॉस्फोरस 40-50 कि.ग्रा. एवं पोटाश 40-50 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग किया जा सकता है। सामान्यत: नाइट्रोजन की आधी एवं फॉस्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा बुआई के समय दी जानी चाहिए। नाइट्रोजन की शेष मात्रा दो भागों में बुआई के 3 सप्ताह एवं 5 सप्ताह बाद प्रयोग कर सकते हैं। असिंचित क्षेत्रों के शुष्क एवं कम वर्षा वाले क्षेत्रों में नाइट्रोजन 30-40 कि.ग्रा., फॉस्फोरस 25 कि.ग्रा. एवं पोटाश 25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग किया जा सकता है। खारे पानी वाले क्षेत्रों में 0.25 से 0.5 क्विंटल प्रति हैक्टर जिप्सम का प्रयोग पैदावार बढ़ाने में सहायक सिद्ध होता है। लवणग्रस्त मृदाओं में बाजरा-सरसों फसल चक्र में अगर सरसों की फसल में जिंक सल्फेट नहीं डाला गया हो तो, बाजरे में 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हैक्टर की दर से बिजाई के समय डाल दें। यदि मृदा में लौह की बहुत कम उपलब्धता हो, तो इस कमी को दूर करने के लिए फसल की बुआई करने से पहले 10 टन गोबर की खाद तथा बुआई के समय 50 कि.ग्रा. फेरस सल्फेट प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करें।

सूक्ष्म पोषक तत्वों का पत्तियों पर छिड़काव

लवणग्रस्त मृदाओं में विशेषतौर से आयरन व जिंक कम विलेयता के कारण पौधों को आसानी से उपलब्ध नहीं हो पाते हैं। इन मृदाओं में जिंक की कमी से बाजरे में इंटरनोड की लंबाई कम हो जाती है और ऊपरी पत्तियां मुड़ जाती हैं।

बाजरे में जिंक की कमी के लक्षण 2 से 3 सप्ताह में दिखाई देने लगते हैं। इसकी कमी के लक्षण नई पत्तियों पर सबसे पहले दिखाई देते हैं। पत्तियों की मध्य शिरा के चारों ओर पीले बैंड और लकीरें दिखाई देती हैं, परंतु मध्य शिरा और पत्ती का किनारा हरा रहता है। आयरन की कमी के कारण बाजरे की नई पत्तियों में हरिमाहीनता हो जाती है। पौधे छोटे एवं कमजोर रह जाते हैं, जिससे फसल की पैदावार कम होती है। इसके लिए फसल में सूक्ष्म पोषक तत्वों का पत्तियों पर छिड़काव करना सबसे प्रभावी तरीका है। बाजरे की खड़ी फसल में जिंक व आयरन की कमी को दूर करने के लिए जिंक सल्फेट का 0.5 प्रतिशत तथा फेरस सल्फेट का एक प्रतिशत घोल बनाकर बुआई के 25-35 दिनों के बाद दो से तीन बार (15 दिनों के अंतराल पर) छिड़काव करने से इनकी कमी को दूर किया जा सकता है।

सिंचाई

फूल आने एवं दाने बनने के समय, खेत में पर्याप्त नमी होना आवश्यक है। यदि इस अवस्था में वर्षा न हो तो सिंचाई करनी चाहिए,

पौध उखाड़ने का समय

तीन से चार सप्ताह की पौध का ही रोपण करें। पहली जुलाई की बोई नर्सरी से तीन से चार सप्ताह की पौध रोपना, समय पर खेत में सीधी बिजाई न कर पाने से अच्छा है। पौध उखाड़ते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि इसकी जड़ों को कम से कम क्षति पहुंचे। पौध उखाड़ते समय यदि वर्षा न हुई हो तो खेत को सिंचाई करके गीला करना जरूरी है। पौध के ऊपरी भागों को काट देना चाहिए। डाउनी मिल्ड्यू रोगग्रस्त पौध को उखाड़ते ही नष्ट कर देना चाहिए।

अन्यथा उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। जिन क्षेत्रों में वार्षिक वर्षा 400 मि.मी. से कम हो, वहां बाजरे की फसल अच्छी तरह जम जाने के बाद रेतीली तथा दोमट रेतीली मृदा में 8 डेसीसीमन प्रति मीटर विद्युत चालकता तथा अच्छे जल निकास वाली दोमट मिट्टी में 6 डेसीसीमन प्रति मीटर विद्युत चालकता वाले खारे पानी से एक या दो सिंचाइयां करें। इससे दाने की पैदावार में विशेष कमी नहीं आती है। जिन क्षेत्रों में वर्षा कम हो वहां मिश्रण विधि से विद्युत चालकता को घटाकर आधी कर देनी चाहिए। जिन क्षेत्रों में अच्छा जल उपलब्ध नहीं हो और वर्षा की विषमता ज्यादा हो, वहां किसान खराब गुणवत्ता (लवणीय व क्षारीय) वाला पानी भी प्रयोग कर सकते हैं। ऐसी परिस्थतियों में सिंचाई प्रबंधन बहुत आवश्यक है। बाजरे की फसल में बहुत कम पानी की जरुरत होती है। लवणीय व क्षारीय पानी का प्रयोग करने में छिड़काव (फव्वारा) तथा टपक (ड्रिप) सिंचाई विधियां अधिक सक्षम हैं। क्षारीय/लवणीय जल से सिंचाई करते समय एक बार में अधिक पानी देने की बजाय कम अंतराल पर दो सिंचाइयां करना ठीक रहता है। अपशिष्ट सोडियम कार्बोनेटयुक्त सिंचाई जल के लिए जिप्सम की आवश्यक मात्रा का निर्धारण मृदा एवं पानी जांच करने वाली प्रयोगशाला में सिंचाई जल का नमूना भेजकर किया जा सकता है।

रोग

बाजरे की फसल में रोगों का प्रकोप कम होता है, लेकिन रोग होने की अवस्था में इसका प्रबंधन अति आवश्यक है। बाजरा में मुख्यत: डाउनी मिल्ड्यू, अरगट, स्मट, ब्लास्ट एवं रतुआ रोगों का प्रकोप होता है। किसान रोगरोधी किस्मों का चुनाव एवं रसायनों का प्रयोग कर रोगों से होने वाले नुकसान को कम कर सकते हैं। डाउनी मिल्ड्यू अधिक हानि पहुंचाने वाला मुख्य रोग है। इसकी तीव्रता अधिक होने से उपज में 60-70 प्रतिशत तक कमी हो सकती है।

डाउनी मिल्ड्यू या हरी बालियों वाला रोग

इस रोग से संक्रमित पौधे बौने रह जाते हैं। पत्ते पीले पड़ जाते हैं और पत्तियों की निचली सतह पर सफेद पाउडर सा जमा हो जाता है। डाउनी मिल्ड्यू से प्रभावित फसल दूर से ही पीली दिखाई देती है। पत्ते सूखने शुरू हो जाते हैं तथा पौधा नष्ट हो जाता है। हरी बालियों की स्थिति में संभावित बालियां घास जैसा रूप धारण कर लेती हैं, जो काफी समय तक हरी रहती हैं। उग्र संक्रमण से फसल पूर्णत: नष्ट हो सकती है।

खाद्य सुरक्षा में बाजरे का अहम् योगदान

अरगट (चेंपा)

रोगग्रस्त बालियों से हल्दी या गुलाबी रंग का चिपचिपा गाढ़ा रस टपकने लगता है, जो कि बाद में गहरा भूरा हो जाता है। कुछ दिनों बाद दानों के स्थान पर गहरे भूरे रंग के पिंड बन जाते हैं। चिपचिपा पदार्थ व पिंड दोनों ही पशुओं और मनुष्य के लिए हानिकारक (जहरीला) हैं।

स्मट (कांगियारी)

बालियों की शुरू की अवस्था में जगह-जगह रोगग्रस्त दाने बनते हैं, जो आकार में बड़े, चमकदार व गहरे हरे रंग के होते हैं। बाद में ये भूरे रंग के हो जाते हैं। अंत में इनमें काले रंग का पाउडर सा भर जाता है। ये रोगजनक फफूंद के बीजाणु होते हैं।

रोकथाम

बीजोपचार: बीज का भलीभांति निरीक्षण करें और देखें कि उनमें अरगट (चेंपा) के पिंड न हों। यदि बीज किसी प्रमाणित संस्था से न लिया गया हो, तो अरगट के पिंड हाथ से चुनकर बाहर निकाल दें। यदि किसान अपना ही बीज उपयोग में ला रहे हों, तो पिंडों को हाथ से चुनकर निकाल दें या नमक के घोल में बीज को डुबोकर उपचारित करें। इस विधि में 10 प्रतिशत नमक के घोल में बीज को डालकर 10 मिनट तक चलाएं और ऊपर तैरते हुए पिंडों को निकाल दें और बाद में जलाकर नष्ट कर दें। घोल में नीचे बैठे भारी स्वस्थ बीज को बाहर निकाल लें और साफ पानी से अच्छी तरह धो लें, जिससे बीज की सतह पर नमक का कोई अंश न रह जाए। यदि नमक का कोई अंश बीज की सतह पर रह जाता है, तो उससे बीज के अंकुरण पर बुरा प्रभाव पड़ता है। अंत में सारे बीजों को छाया में सुखा लें। ऐसे बीजों को बोने से पहले 2 ग्राम एमीसान तथा 4 ग्राम थीरम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से सुखाकर उपचार करें।

रोगग्रस्त पौधों को निकालना: पत्तों पर ज्यों ही डाउनी मिल्ड्यू रोग के लक्षण दिखाई पड़ें, इन्हें उखाड़कर नष्ट कर दें। उखाड़े हुए रोगग्रस्त पौधों का संपर्क स्वस्थ पौधों से न हो। यह काम बुआई के 20 दिनों के अंदर अवश्य करना चाहिए। मध्य से अधिक पौधे निकाल देने की स्थिति में उस जगह पर स्वस्थ पौधे रोप दें। रोगग्राही किस्मों में, रोगग्रस्त पौधों को निकालने के बाद, फसल पर 0.2 प्रतिशत जाइनेब या मेन्कोजेब के घोल (500 ग्राम दवा व 250 लीटर पानी प्रति एकड़) का छिड़काव करें।

कटाई, उपज एवं भंडारण

फसल पकने के समय दाने गहरे भूरे रंग के हो जाते हैं। सामान्यत: बाजरे की फसल 75-85 दिनों के अंदर पक जाती है। बाजरे की बालियां पहले काट ली जाती हैं, उसके बाद डंठल को काटकर सुखा लेते हैं। फसल की बालियों को मड़ाई से पूर्व अच्छी तरह सुखा लेना चाहिए। बालियों से दाने अलग करने के लिए थ्रेशर का प्रयोग किया जा सकता है या बालियों को डंडों से पीटकर दानों को अलग कर सकते हैं। इसके बाद दानों को साफ कर एवं सुखा कर उनका भंडारण किया जाता है। बाजरे की औसत उपज 20-35 क्विंटल प्रति हैक्टर प्राप्त की जा सकती है। बाजरे के भंडारण के समय दानों में नमी की मात्रा 12-14 प्रतिशत होनी चाहिए। भंडारण के लिए लकड़ी या धातु बिन का प्रयोग किया जा सकता है।

■

साभार: कृषि किरण

पादप वृद्धि हार्मोन्स से बढ़ाएं गन्ने की पैदावार

रमाकान्त राय, पुष्पा सिंह, राजीव कुमार और **अश्विनी दत्त पाठक**
भाकृअनुप-भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ (उत्तर प्रदेश)

“उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में गन्ने का कम जमाव, कल्लों का अलग-अलग समय पर बनना और तनों का अपर्याप्त विकास इसकी पैदावार में बड़ी बाधा है। ऐसी जगहों पर गन्ने की बुआई के बाद उसकी बढ़वार के समय पत्तियों को जो आच्छादन मिलना चाहिए वह नहीं मिल पाता है। इसके साथ ही प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया में अधिकतर ऊर्जा व्यर्थ चली जाती है। ऐसे में यहां पर गन्ने के उत्पादन को बढ़ाना एक चुनौती है। लेकिन कृषि वैज्ञानिकों ने गन्ने में इथ्रेल और जिबरैलिक एसिड जैसे पादप वृद्धि हार्मोन्स का अनूठा प्रयोग किया, जिससे गन्ने का जमाव शीघ्र और कल्लों की मृत्युदर में कमी होने के साथ ही गन्ने की संख्या और उसके औसत भार में वृद्धि हुई। यह सफल प्रयोग किसानों के लिए उनके खेतों पर किया गया। किसान गन्ने की बावक और पेड़ी फसल पर इन पादप वृद्धि हार्मोन्स का प्रयोग करके, भरपूर उपज लेने के साथ ही इस नगदी फसल से अपनी आय भी बढ़ा सकते हैं।”

पत्तियों के कोण बदलने से प्लैनोफिल और इरेक्टोफिल का बनना

उपोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में गन्ने की पैदावार 65-69 टन/हैक्टर ही मिल पाती है। इसके मुख्य कारणों में जमाव और पौधों की वृद्धि दर का कम होना, कल्लों की संख्या का कम बनना, सोर्स-सिंक का संबंध, गन्ने के तनों का कम बनना तथा उनका भार कम होना है। गन्ना बोने के बाद उसका जमाव 45 दिनों तक चलता रहता है, जिससे उसकी बढ़वार के लिए कम समय मिलता है। शुरू की अवस्था में पत्तियों का आच्छादन कम होने से लीफ-एरिया-इंडेक्स (एलएआई) कम मिलता है, जिसके कारण शुष्क पदार्थ कम होता है। पूरी बढ़वार की अवस्थाओं में पत्तियों का आच्छादन, उनका फैलाव, पत्तियों की संख्या, तनों की संख्या कम होने से, जड़ों की संख्या और उनका शुष्क पदार्थ कम प्राप्त होता है। सभी कार्य तभी संभव हो पाते हैं, जब प्रकाश संश्लेषण पूरी क्षमता से होता है। इन ऊतकों के बनते समय प्रकाश संश्लेषण से प्राप्त ऊर्जा अगर अधिक मात्रा में श्वसन में प्रयुक्त हो जाती है तो ऊतकों का बनना कम हो जाता है या वे समय से पहले ही मर जाते हैं। इनमें गन्ने के कल्लों का मरना एक प्रमुख वजह है। यही कारण है कि प्रकाश संश्लेषण, श्वसन, स्टोमेटा की सक्रियता और आंतरिक कार्बनडाइऑक्साइड के संबंध ऐसे होने चाहिए, जिससे ऊर्जा का उपयोग बढ़वार

में अवश्य हो। अगर इस ऊर्जा का अधिक भाग नष्ट हो जाये तो बढ़वार कम हो जाती है। इन प्रक्रियाओं में नाइट्रोजन का उपयोग अधिक होता है। यदि नाइट्रोजन का प्रयोग कम हो तो पैदावार अवश्य ही घटने लगती है।

इसी तरह जल और पोषक तत्वों का प्रयोग भी घट जाता है। इन सबका उपयोग यदि अधिकतम सीमा तक होता है तो अवश्य ही पैदावार अधिक होती है। गन्ने की बावक और पेड़ी की फसल में इन प्रक्रियाओं की दर अलग-अलग होती है। गन्ने की पैदावार कम होने का दूसरा प्रमुख कारण कल्लों का अलग-अलग समय पर बनना भी है। यदि कल्लों का विकास एक साथ हो तो उनकी परिपक्वता भी एक साथ होगी और उनका भार भी अधिक मिलता है। यही नहीं उनके रस की गुणवत्ता भी अधिक पायी गई है। कल्लों को यदि मरने से बचा लिया जाये तो गन्ने की कटाई के बाद अधिक गन्नों के मिलने की संभावना बढ़ जाती है। बढ़वार की इन प्रक्रियाओं को अगस्त-सितंबर तक अधिकतम सीमा प्राप्त कर लेनी चाहिए। इसके

इथ्रेल, जी.ए.-3 एवं साइटोकाइनिन के प्रयोग से कंट्रोल की तुलना में अधिक कल्लों का बनना

बाद प्रकाश संश्लेषण से प्राप्त अवयव शर्करा के रूप में गन्नों में एकत्रित होने लगते हैं। अत: गन्ने की पैदावार बढ़ाने के लिए गन्नों की संख्या और गन्ने का औसत भार बढ़ाना आवश्यक है।

उपरोक्त बातों को ध्यान में रखकर इथ्रेल और जिबरैलिक एसिड का प्रयोग शीघ्र और अधिक जमाव, शुरू की अवस्था में वृद्धि-दर अधिक बढ़ाना, कल्लों की बढ़वार एक साथ करवाना, कल्लों की मृत्युदर कम रखना और प्रकाश संश्लेषण के अवयवों का अधिक उपयोग, गन्नों की संख्या, गन्ने का

गन्ने की भरपूर फसल

औसत भार तथा चीनी की मात्रा बढ़ाने में किया गया। इस सफलता का प्रदर्शन किसानों के खेतों में किया गया।

इन दोनों वृद्धि पादप हार्मोन्स के प्रयोग से गन्ने की कलिकाओं की प्रस्फुटन क्षमता, उनका जमाव और कम समय में अधिक पौधों की संख्या बसन्तकालीन तथा शरदकालीन बावक फसल में प्रदर्शित की जा चुकी है।

आर्किटेक्चर के परिवर्तन के कारण हेटरोट्राफिक से ऑटोट्राफिक परिवर्तन बुआई के 45 दिनों तक शीघ्रता से होता है। इसके कारण 45 दिनों तक आरंभिक पौधों की संख्या शीघ्र स्थापित हो जाती है। इसके बाद पौधों में स्मार्ट पर्ण आच्छादन होने से प्रकाश संश्लेषण तेजी से होता है। इसके विपरीत जड़ों की संख्या भी बढ़ जाती है। 60 दिनों तक पौधों की संख्या अधिक बन जाती है।

पत्तियों के कोणों में बदलाव से कार्बनडाइऑक्साइड का स्थिरीकरण और प्रकाश का उपयोग अधिक होने लगता है। पुन: जीए-3 भी पत्तियों के कोणों का बदलाव 90, 120 और 150 दिनों पर करता है और अधिकतर पत्तियां ऊर्ध्वाकार हो जाती हैं। पत्तियों के कोण और अधिक घट जाते

कंट्रोल और इथ्रेल+जी.ए.-3 में जड़ों के आकार में परिवर्तन

इथ्रेल और जी.ए.-3 के प्रयोग से गन्नों की संख्या, उसकी लम्बाई, पोरों की लम्बाई में परिवर्तन और कल्लों की मृत्युदर में कमी

पेड़ी की फसल के लिए उपयोगी पादप वृद्धि हार्मोन्स

पेड़ी की फसल में भी इसके कटने के 60 दिनों बाद इथ्रेल का 100 पीपीएम और जी.ए.-3 का 90, 120, 150 दिनों के बाद छिड़काव करने से कल्लों की मृत्युदर घट जाती है। इससे जीवित कल्ले अधिक बचने लगते हैं और उनमें भी पोरों की लंबाई में वृद्धि और तनों की वृद्धिदर बढ़ जाती है। इसके कारण कंट्रोल की तुलना में 66.5 टन/हैक्टर अधिक गन्ने की पैदावार मिलती है। इसके साथ ही अगर पेड़ी शुरू करने से पहले उसमें गन्नों की सूखी पत्तियां फैला दी जाये और उनको सड़ाने के लिए पूसा कम्पोस्ट इनाकुलेंट (300 ग्राम/टन सूखी पत्ती) डाला जाये तो अधिकतम कल्लों की संख्या 6.73 लाख/हैक्टर प्राप्त हुई, कल्लों की मृत्युदर 54.5 प्रतिशत घट जाती है। इससे पेराई हेतु गन्नों की संख्या 3.06 लाख/हैक्टर और पैदावार 183.2 टन/हैक्टर प्राप्त हुई, जबकि कंट्रोल में अधिकतम कल्ले 4.59 लाख/हैक्टर, कल्लों की मृत्युदर 66.7 प्रतिशत, पेराई हेतु गन्नों की संख्या 1.53 लाख/हैक्टर और पैदावार 99.8 टन/हैक्टर प्राप्त हुई।

सारणी 1. किसानों को शुद्ध लाभ का ब्यौरा

क्र. सं.	बुआई के प्रकार	पेराई योग्य गन्नों की संख्या/हैक्टर		गन्ने की पैदावार (टन/हैक्टर)		गन्ने से प्राप्त आमदनी (रुपये/हैक्टर)		किसान को शुद्ध लाभ (रुपये/हैक्टर)
		कंट्रोल	पीजीआर	कंट्रोल	पीजीआर	कंट्रोल	पीजीआर	
बावक फसल								
1.	शरदकालीन	152	443.3	129	333	4,06,350/-	10,48,950/-	6,42,600/-
2.	बसन्तकालीन	132	301	84.7	255	2,66,805/-	8,03,250/-	5,36,445/-
3	देर से बोई गई	65	94	39.7	76	1,25,055/-	2,39,400/-	1,14,345/-
पेड़ी फसल								
1	शरदकालीन	158	268	99.67	158	3,13,961/-	4,97,700/-	1,83,739/-
2	बसन्तकालीन	150	306	99.8	183.2	3,14,370/-	5,77,080/-	2,62,710/-
3	देर से बोई गई	134	156	78.69	96.63	2,47,874/-	3,04,385/-	56,511/-
किसानों के खेतों पर प्रदर्शन								
शामली, मुजफ्फरनगर, उत्तर प्रदेश								
1	मुण्डेटकला	126.6	150	54.1	150	1,70,415/-	4,72,500/-	3,02,085/-
2	गोहरनी	127.5	165	46.41	202.3	1,46,192/-	6,36,245/-	4,90,053/-
	मोतीपुर, बिहार							
1	बसंतकालीन बावक फसल	167	302	108	258	3,40,200/-	8,18,700/-	4,78,500/-

स्रोत: भाकृअनुप-आईआईएसआर, लखनऊ

कल्लों की मृत्युदर को कम करना

हैं, जिससे स्मार्ट पर्ण आच्छादन और अधिक बढ़ जाता है। इसके कारण प्रकाश संश्लेषण अधिक होने से पौधों के शुष्क भार में आशातीत वृद्धि हो जाती है। दूसरा फायदा ऊर्ध्वाकार पत्तियां बनने से पत्तियों के बीच में छाया का प्रभाव कम हो जाता है। इससे नीचे तक की पत्तियां प्रकाश संश्लेषण पूरी क्षमता से करती हैं। जीए-3 के प्रभाव से जमीन के ऊपर होने वाले परिवर्तन के कारण जमीन के नीचे भी जड़ों की संख्या, उनके भार तथा मूल रोमों के बनने की क्षमता बढ़ जाती है। यह पानी और पोषक तत्वों को ऊपर बढ़ते हुए सोर्स-सिंक के परिवर्तन को पूरा सहयोग करता है।

इसके कारण पौधों की संख्या, कल्लों के न मरने के कारण अधिक बढ़ जाती है, जबकि कंट्रोल में कल्ले अधिक मर जाते हैं और पौधों की संख्या घट जाती है। इसका प्रभाव बाद में पेराई हेतु मिलने वाले गन्नों की संख्या पर पड़ता है। यह संख्या कंट्रोल में अधिक दर से घट जाती है। इथ्रेल और जी.ए.-3 के प्रभाव के कारण नेट एसिमिलेशन बढ़वार, लीफ-एरिया रेशों और लीफ-एरिया ड्यूरेशन बढ़ जाती है, जिसके कारण पोरों की लंबाई और उनका भार अधिक बढ़ जाता है।

इथ्रेल और जिबरैलिक एसिड के छिड़काव और सूखी पत्तियों को गलाने से पेराई हेतु गन्नों की संख्या और पोरों की लंबाई प्रथम पेड़ी में बढ़ जाती है।

इथ्रेल और जिबरैलिक एसिड के प्रभाव से गन्नों की अधिक संख्या प्रति हैक्टर प्राप्त करने के लिए स्मार्ट पर्ण आच्छादन होना जरूरी है। इसके लिए जड़तंत्र का विकास भी होना आवश्यक है। यही कारण है कि पादप वृद्धि हार्मोन्स से एक पौधा 331 सें.मी.^{2} जमीन घेरता है। कंट्रोल में एक पौधा 800 सें.मी.^{2}

पादप वृद्धि हार्मोन्स से गन्ने की ज्यादा पैदावार

पेड़ी फसल की पोरियों की लंबाई में जी.ए.-3 के प्रभाव के कारण परिवर्तन

जमीन घेरता है। आर्किटेक्चरल बदलाव से गन्ने की पैदावार 255 टन/हैक्टर प्राप्त होती है, जबकि कंट्रोल में 70-85 टन/हैक्टर पैदावार होती है। यह प्रभाव बसन्तकालीन गन्ने में पाया गया। पेड़ी फसल की पेराई हेतु गन्नों की संख्या 3.06 लाख/हैक्टर प्राप्त हुई और गन्ने की पैदावार 183.2 टन/हैक्टर मिली। इसी तरह शरदकालीन गन्ने में पादप वृद्धि हार्मोन्स से 330 टन/हैक्टर पैदावार प्राप्त हुई और कंट्रोल में 129 टन/हैक्टर ही पैदावार मिल पाती है।

उपरोक्त बातों को ध्यान में रखकर इथ्रेल और जिबरैलिक एसिड का प्रयोग शीघ्र और अधिक जमाव, शुरू की अवस्था में वृद्धि दर अधिक बढ़ाना, कल्लों की बढ़वार एक साथ करवाना, कल्लों की मृत्युदर कम करना और प्रकाश संश्लेषण के अवयवों का अधिक उपयोग कर गन्नों की संख्या, गन्ने का औसत भार और चीनी की मात्रा बढ़ाने में किया गया और इस सफलता का प्रदर्शन किसानों के खेतों में किया गया। ■

खाद्य पदार्थों से विषाक्त तत्वों का निवारण

अलका जोशी, श्रुति सेठी, बिंदवी अरोरा, शालिनी गौड़ रूद्र, राम रोशन शर्मा और **विद्या राम सागर**
भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110 012

" उत्पादों को खाने से पहले एहतियात बरतना आवश्यक है। सही प्रसंस्करण के तरीकों द्वारा, जैसे-धोना, उबालना, भूनना एवं अंकुरित करके इन प्रतिपोषक तत्वों की मात्रा को काफी कम किया जा सकता है। कुछ उत्पादों के लिए उपयुक्त प्रसंस्करण के साथ उचित भंडारण भी आवश्यक है जैसे-मूंगफली, मक्का इत्यादि। प्रतिपोषक तत्व का स्वभाव यह निर्धारित करता है कि किस प्रक्रिया द्वारा इन यौगिकों के प्रभाव को कम किया जा सकता है जैसे-इनकी घुलनशीलता, ताप के प्रति इनकी संवेदनशीलता इत्यादि। अत: इन उत्पादों को उपभोग करने से पहले इनमें उपस्थित प्रतिपोषक तत्वों को जानना, उन्हें सुरक्षित स्तर तक कम करना औद्योगिक स्तर पर ही नहीं अपितु घरेलू स्तर पर भी आवश्यक है, क्योंकि ये सभी उत्पाद हमारे रोजाना के भोजन का हिस्सा हैं। "

ग्लाइकोएल्केलॉइड युक्त आलू का कंद

पके हुए चावल

भोजन, मानव शरीर के लिए ऊर्जा एवं पोषण का स्रोत है। भोजन में कई पोषक तत्व विभिन्न मात्रा में पाये जाते हैं, जिन्हें हम वृहत (मैक्रो) या सूक्ष्म (माइक्रो) पोषक तत्व कहते हैं। इनमें प्रमुख हैं कार्बोहाइड्रेट्स, प्रोटीन, वसा, विटामिन एवं खनिज लवण। इसके साथ ही साथ इनमें कई अन्य यौगिक भी मौजूद हैं, जो पोषण गुणवत्ता में वृद्धि के साथ उसे कार्यात्मक भी बनाते हैं। ऐसे तत्वों को हम न्यूट्रास्यूटिकल्स कहते हैं और ऐसे उत्पादों को हम फंक्शनल उत्पाद कहते हैं।

भोजन में पाये जाने वाले विभिन्न तत्वों के आधार पर उनके पोषक एवं औषधीय गुण निर्धारित होते हैं। पोषक गुणवत्ता के तत्वों के साथ ही साथ कई खाद्य उत्पादों में प्राकृतिक रूप से कुछ ऐसे तत्व पाये जाते हैं जिनका या तो कोई पोषक महत्व नहीं होता या फिर यह अन्य तत्वों के पोषक महत्व को कम कर देते हैं। ये तत्व मानव शरीर के उचित विकास के लिए हानिकारक हैं। अत: हमें उन खाद्य उत्पादों की जानकारी होना आवश्यक है, जिनमें ये तत्व पाये जाते हैं, विशेषत: तब जब ये हमारे रोजाना के आहार का अभिन्न हिस्सा हों।

इसी महत्ता को ध्यान में रखते हुए यह लेख कुछ सामान्य तौर पर खाये जाने वाले खाद्य उत्पादों के प्रतिपोषक कारकों/यौगिकों की उपस्थिति पर प्रकाश डालता है। साथ ही साथ इस लेख में प्रसंस्करण के उन उपायों को भी सम्मिलित किया गया है, जिनको घर पर या औद्योगिक स्तर पर आसानी से अपनाकर इन यौगिकों के दुष्प्रभाव से बचा जा सकता है या इनका निवारण किया जा सकता है।

आलू

विश्व की अति महत्वपूर्ण खाद्य फसलों जैसे-चावल, गेहूं और मक्का के बाद आलू चौथे स्थान पर आता है। साधारणत: आलू किसी भी हानिकारक अवयव से दूर है। सावधानी तब बरतने की आवश्यकता है, जब आलू के कुछ भागों में हरा रंग दिखे। यह हरा रंग ग्लाइकोएल्केलॉइड (सोलेनिन एवं चेकोनिन) की उपस्थिति को दर्शाता है। ये प्राकृतिक रूप से विषाक्त पदार्थ होते हैं। आलू में पाये जाने वाले ग्लाइकोएल्केलॉइड पाचन तथा तंत्रिका तंत्र के विकार का कारण बनते हैं। वैज्ञानिक शोध बताते हैं कि अधिक मात्रा में ग्लाइकोएल्केलॉइड का सेवन प्राणघातक भी हो सकता है। भाकृअनुप-केन्द्रीय आलू अनुसंधान संस्थान, शिमला में आलू में ग्लाइकोएल्केलॉइड की मात्रा के आंकलन के लिए कार्यप्रणाली का मानकीकरण किया गया है। यहां किए गए बहुत से अध्ययनों एवं शोध कार्यों में यह निष्कर्ष निकला है कि यदि आलू के प्रति 100 ग्राम में 20 मि.ग्रा. से अधिक ग्लाइकोएल्केलॉइड उपस्थित है तो इस प्रकार के आलू मानव एवं पशुओं के लिए उपभोग

करने योग्य नहीं होते हैं।

चावल

यह हमारे रोजाना के भोजन का एक अभिन्न हिस्सा है। पके हुए चावल को उपभोग के लिए पूर्णत: सुरक्षित माना जाता है किन्तु यदि इन्हीं चावलों को कुछ समय के लिए कमरे के तापमान पर ही रहने दिया जाए तो ये खाने के लिए सुरक्षित नहीं रह जाते हैं। चावल के नमीयुक्त एवं गर्म होने के कारण यह अनाजों से प्रसंस्करित होने वाले उत्पादों की सामान्य समस्या बेसिलस सीरियस के पनपने के लिए एक आदर्श स्रोत बन जाते हैं। यद्यपि यह प्राणघातक सूक्ष्मजीव नहीं है किन्तु इसके संक्रमण से सिर दर्द, जी मिचलाना और डायरिया जैसे लक्षण उत्पन्न होते हैं। चावल को फिर से गर्म करना भी सुरक्षित विकल्प नहीं है, क्योंकि बेसिलस सीरियस के बीजाणु 100 डिग्री से अधिक तापमान पर चावल को गर्म करने पर भी नष्ट नहीं होते। इस कारण से चावल को पकाकर तुरंत ही खाने की सलाह दी जाती है।

दालें

दालों में उच्च अणुभार वाली जटिल लघु शर्कराएं (औलिगो) होती हैं, जो खाने के बाद भारीपन तथा गैस उत्पन्न करती हैं। विशेषत: मानव शरीर में इन शर्कराओं (स्टेकियोज, रेफिनोस एवं वरबेस्कोज इत्यादि) को पचाने की क्षमता नहीं होती। अत: इन दालों को पकाने से पहले कई बार धोना आवश्यक है। ये सभी शर्कराएं पानी में घुलनशील हैं। कई बार धोने से दालों में मौजूद लघु शर्कराओं की मात्रा को काफी कम किया जा सकता है। यही कारण है कि घरों में भी दालों जैसे-अरहर, चना आदि को पकाने से पूर्व कई बार धोने या भिगोकर रखने का प्रचलन है।

सोयाबीन

सोयाबीन शाकाहारियों के लिए प्रोटीन के सर्वोत्तम स्रोतों में से एक है। इसमें प्राकृतिक रूप से कई प्रतिपोषक तत्व पाएं जाते हैं जैसे-ट्रिप्सिन इनहिबिटर एवं हिमाग्लूटेनिन इत्यादि। ट्रिप्सिन इनहिबिटर पाचन तंत्र में ट्रिप्सिन की सक्रियता को कम कर देते हैं। इस कारण प्रोटीन के पाचन में कठिनाई आती है तथा प्रोटीन की शरीर में उपलब्धता भी कम हो जाती है। केवल सोयाबीन में ही नहीं बल्कि कई अन्य दालों में भी ट्रिप्सिन इनहिबिटर पाये जाते हैं जैसे-राजमा इत्यादि। इन प्रतिपोषक कारकों के कारण ही पादपजनित प्रोटीन की गुणवत्ता पशुजनित प्रोटीन (दूध, मछली, मांस) से कम मानी जाती है। इसी श्रृंखला में एक और अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रतिपोषक तत्व जो दालों में पाया जाता है वह है हिमाग्लूटेनिन। यह लाल रक्त कणिकाओं को चिपका देता है। इसके अतिरिक्त भी दालों में अन्य कई प्रतिपोषक कारक पाए जाते हैं। सोयाबीन के लिए वर्णित दोनों प्रतिपोषक तत्व तापमान संवेदी हैं, अत: उच्च तापमान पर ये नष्ट हो जाते हैं। सही तापमान में पकाई गई दालों में ये प्रतिपोषक तत्व अत्यन्त कम मात्रा में पाए जाते हैं ,जिससे इन्हें बिना किसी संकोच के खाया जा सकता है। घर पर दालों को उबालकर या भूनकर इन कारकों के दुष्प्रभाव से बचा जा सकता है। संभवत: यही कारण है कि उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्रों में सोयाबीन को भूनकर खाने का प्रचलन है। इसके साथ ही साथ किसी भी दाल को घर पर भी उच्च ताप पर पकाकर, तलकर एवं भूनकर ही खाया जाता है। वैज्ञानिक ट्रिप्सिन इनहिबिटर की 1-1.5 टी.आई.यू. मात्रा प्रति मि.ग्रा. शुष्क भार के आधार पर सुरक्षित मानते हैं। इस स्तर तक पहुंचने के लिए उच्च तापमान की आवश्यकता होती है। अत: कच्ची सोयाबीन की तुलना में ट्रिप्सिन इनहिबिटर की 79-87 प्रतिशत तक गिरावट को सुरक्षित माना गया है।

मूंगफली

मूंगफली में कुछ ऐसे तत्व पाये जाते हैं, जो थाइरॉयड ग्रंथि के द्वारा आयोडीन के अवशोषण में बाधा डालते हैं। ऐसे तत्वों को ग्वाइट्रोजेंस कहते हैं। ग्वाइट्रोजेंस की अधिक मात्रा नियमित रूप से लेने पर गॉयटर की समस्या हो सकती है। यह थाइरॉयड ग्रंथि का ही फूला हुआ स्वरूप है। वास्तव में थाइरॉयड ग्रंथि एक अंत: स्रावी ग्रंथि है, जो शरीर की आवश्यकता के अनुसार हार्मोन का स्राव करती है। जब शरीर में आयोडीन की कमी होने लगती है, तो उस कमी को पूरा करने के लिए थाइरॉयड ग्रंथि और

मूंगफली

विभिन्न प्रकार की दालें

अधिक स्राव करने के लिए बाध्य होती है। इस अतिरिक्त कार्य को पूरा करने के लिए ग्रंथि की कोशिकाओं में तीव्र गति से गुणन होता है। फलस्वरूप थाइरॉयड ग्रंथि फूल जाती है। ग्वाइट्रोजेंस मुख्यत: मूंगफली के बाहर के लाल या गुलाबी आवरण में संकेंद्रित रहते हैं। ग्वाइट्रोजेंस अधिक तापमान के प्रति संवेदनशील होते हैं। अत: मूंगफली को सदा भूनकर खाया जाता है। जब भी मूंगफली को गर्म एवं नमीयुक्त वातावरण में संरक्षित करते हैं, तो इसमें कई प्रकार के विषाक्त अवयव उत्पन्न हो जाते हैं। इन्हें एफ्लाटॉक्सिन्स कहते हैं। ये मुख्यत: एस्परजिलस फ्लेवस नामक फफूंद के कारण होते हैं। एफ्लाटॉक्सिन्स कई प्रकार के होते हैं जैसे-बी 1, 2, 3, जी 1, 2 एम 1, 2 पी 1, क्यू 1, एच 1 इत्यादि। ये अत्यन्त विषैले यौगिक हैं, जो यकृत के कैंसर का कारण बन सकते हैं। इसी कारण इन्हें हिपेटोकार्सिनोजन भी कहते हैं। हिपेटिक का अर्थ है-यकृत संबंधी।

सेब

सेब में बहुत से स्वास्थ्यवर्द्धक गुण पाए जाते हैं। इसके बीजों में साइनोजन यौगिक होते हैं। जब ये यौगिक पानी की उपस्थिति में टूटते हैं तो हाइड्रोसायनिक अम्ल बनते हैं। हाइड्रोसायनिक अम्ल एक अत्यन्त विषैला पदार्थ है, इसीलिए सेब के बीजों को सेब

सेब

के किसी भी उत्पाद का भाग नहीं बनाना चाहिए। साइनोजन यौगिक का स्तर 1 मि.ग्रा. प्रति कि.ग्रा. शरीर भार से कम होना चाहिए, जो कि सेब के बीजों में लगभग 690-790 मि.ग्रा. प्रति कि.ग्रा. शरीर भार होता है।

काजू

कच्चे काजू में एक विषाक्त यौगिक पाया जाता है, जिसे युरूसीनोल कहते हैं। काजू को भूनकर खाना प्राचीनकाल से चला

काजू

आ रहा है। भूनने से काजू न केवल खाने के लिए सुरक्षित हो जाते हैं अपितु उनमें एक विशिष्ट स्वाद भी उत्पन्न हो जाता है। भारत के कुछ भागों में काजू को भाप में पकाकर भी खाया जाता है। काजू को इस प्रकार से भी प्रसंस्करित कर युरूसीनोल के दुष्प्रभावों को कम किया जा सकता है।

ज्वार

ज्वार देखने में खुरदरा एवं सख्त आवरण वाला अनाज है, किन्तु इसके पोषक

अंकुरित ज्वार

गुण कई हैं। भारत एवं अफ्रीका के कई सूखा प्रभावित क्षेत्रों में इसे बहुतायत में खाया जाता है किन्तु एक बात ध्यान देने योग्य है कि ज्वार को कभी भी अंकुरित करके नहीं खाना चाहिए, क्योंकि जो अंकुर, अंकुरित ज्वार से निकलते हैं उनमें साइनोजेन होते हैं।

रेशेयुक्त उत्पाद

सामान्यत: अधिक रेशे वाले उत्पादों को अपने भोजन में शामिल करना स्वास्थ्य की दृष्टि से उत्तम माना जाता है। रेशे दो प्रकार के होते हैं: घुलनशील एवं अघुलनशील। अघुलनशील रेशे अधिकांशत:

अनाजों और दालों में पाये जाते हैं। इन रेशों वाले उत्पादों में प्राकृतिक रूप से फाइटेट (फॉस्फोरस का कार्बनिक रूप) पाये जाते हैं। ये अधिकांशत: अनाजों और दालों के ऊपरी आवरण एवं चोकर इत्यादि में पाये जाते हैं। फाइटेट द्विसंयोजक्ता वाले खाद्य खनिज लवणों की शरीर के लिए उपलब्धता को कम कर देते हैं जैसे-कैल्शियम, जिंक एवं लौह तत्व इत्यादि। साधारणत: एक दिन में वयस्कों को 25-30 ग्राम रेशे खाने की सलाह दी जाती है।

साइनोजेन अत्यधिक विषैले यौगिक हैं, अत: ज्वार को कभी भी अंकुरित करने की सलाह नहीं दी जाती है।

बाकला

बाकला को चौड़ी बीन के नाम से भी जाना जाता है। इसके अत्यधिक सेवन से एनीमिया हो सकता है। यह लाल रुधिर कणिकाओं को विभाजित कर देता है। इस रोग को फेविस्म कहते हैं। इसका नाम

बाकला

बांस

कच्चा पपीता

बाकला के वैज्ञानिक नाम (विसिया फाबा) से लिया गया है। अंकुरण एवं उबालने के बाद इसका प्रभाव अत्यन्त कम हो जाता है। अत: बाकला को उबालकर या उच्च ताप पर पकाकर ही खाने की सलाह दी जाती है।

बांस

बांस का उपयोग बहुत समय पहले से फर्नीचर तथा अन्य सामान बनाने के लिए किया जाता रहा है। किन्तु अपरंपरागत खाद्य स्रोत के रूप में पिछले 10-15 वर्षों में बांस पर राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अत्यधिक शोध कार्य हुआ है। प्रसंस्करित बांस का तना एवं इसका अचार बाजार में उपलब्ध है। उत्तर-पूर्वी हिमालय के पर्वतीय क्षेत्र बांस के पेड़ों का सघन स्रोत हैं। बांस के तने में अत्यधिक साइनोजन यौगिक होते हैं। ये तत्व उच्च ताप से भी अप्रभावित रहते हैं अत: बांस को उपयोग में लाने से पहले इसे बार-बार धोकर साइनोजन यौगिकों की सांद्रता को सुरक्षित सीमा तक कम करना आवश्यक है।

सफेद मूसली

सफेद मूसली (एस्पैरगस) तथा कुछ दालों में प्राकृतिक रूप से सैपोनिन पाये जाते हैं, जो इन उत्पादों को पानी में कुछ घंटे भिगोने पर झाग उत्पन्न करते हैं। सैपोनिन के उपभोग से जी मिचलाना एवं उल्टी जैसी समस्याएं उत्पन्न होती हैं। पानी में कुछ देर के लिए सफेद मूसली को भिगोकर रखने तथा झाग वाले पानी को अलग करने से सैपोनिन की मात्रा काफी कम हो जाती है। यद्यपि कई वैज्ञानिक शोध कार्यों में सैपोनिन के लाभकारी गुणों को भी दर्ज किया गया है।

दूध

दूध में लौह एवं विटामिन-सी के अतिरिक्त सभी पोषक तत्व पाये जाते हैं। इसी कारण से इसे सम्पूर्ण आहार भी कहा गया है। किन्तु लैक्टोज इनटॉलरेंस से पीड़ित लोगों को दूध पचाने में कठिनाई होती है। दूध में उपस्थित शर्करा लैक्टोज के पाचन में उत्प्रेरक (एंजाइम) बीटा ग्लेक्टोसीडेज की मुख्य भूमिका होती है। जिन व्यक्तियों में यह एंजाइम नहीं बनता या कम बनता है वे लैक्टोज इनटॉलरेंस की समस्या से ग्रसित रहते हैं। ऐसे लोगों के लिए दूध की अपेक्षा दही अच्छा विकल्प है। यह पाचन में अपेक्षाकृत सरल है। दही में मौजूद लैक्टोज, सूक्ष्मजीवों द्वारा लैक्टिक एसिड में परिवर्तित कर दी जाती है।

सफेद मूसली

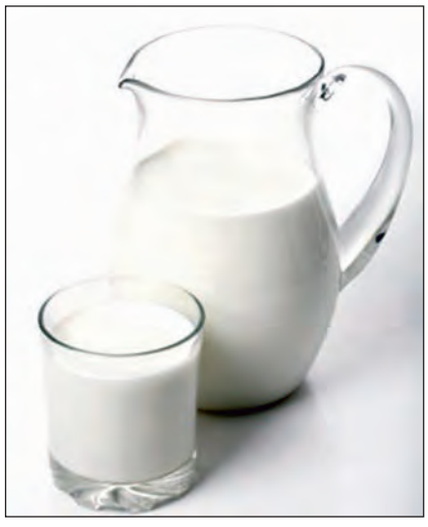

दूध

पपीता

पपीता अपने स्वास्थ्यप्रद गुणों के लिए विश्वविख्यात है। पपीता रेशे, खनिज लवणों, फ्लेवनॉयड्स और केरेटिनोएड से भरपूर होता है। किन्तु गर्भावस्था में कच्चा या कम पका हुआ पपीता खाने के लिए सुरक्षित नहीं माना जाता। इसमें पपैन नामक प्रोटीन विभाजनकारी उत्प्रेरक पाया जाता है। यह तत्व भ्रूण के विकास एवं वृद्धि में बाधा उत्पन्न करता है। बहुत से वैज्ञानिक शोध भी इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। इस उत्प्रेरक के साथ ही साथ पपीते का क्षीर (लेटेक्स) भी भ्रूण के अस्तित्व के लिए बाधक है, क्योंकि यह गर्भाशय में सिकुड़न उत्पन्न करता है।

बकरी पालन को बनाएं, कमाई का जरिया

अर्पण उपाध्याय[1], रोहित गुप्ता[2], दीपक उपाध्याय[3], पुष्पराज शिवहरे[4] और **अतीक अहमद[1]**

" बकरी एक बहुउपयोगी पशु है। यह देश में भूमिहीन, छोटे और सीमान्त किसानों के भरण-पोषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसलिए इसे गरीबों की गाय भी कहा जाता है। बकरियां कम उपजाऊ मृदा में उगने वाली झाड़ियों और पेड़ों की पत्तियां खाकर एवं हर तरह के प्रतिकूल वातावरण में भी कुशलता से जीवित रह सकती हैं। भारत में पशुपालन और कृषि पर निर्भर समाज में बकरियों को अतिरिक्त आय के स्रोत और आपदा के समय बीमा के रूप में पाला जाता है। "

बकरी पालन के फायदे

- बकरी पालन व्यवसाय में शुरुआती लागत कम होती है।
- शरीर का आकार छोटा होने के कारण बकरी पालन में आवास और प्रबंधन संबंधी आवश्यकताएं कम होती हैं।
- प्राय: बकरियां 10-12 महीने की आयु में गर्भधारण करने के योग्य हो जाती हैं एवं 16-17 महीने की आयु में प्रथम बार मेमने दे सकती हैं। ये आमतौर पर एक या दो मेमने देती हैं पर कभी-कभी तीन और चार मेमने भी दे देती हैं।
- सूखाग्रस्त क्षेत्रों में बकरी पालन अन्य पशुधन प्रजातियों की तुलना में बहुत कम जोखिम भरा है।
- बकरी पालन में नर और मादा बकरियों, दोनों का अच्छा मूल्य प्राप्त होता है।
- बकरियां विभिन्न प्रकार की कांटेदार झाड़ियों, खरपतवारों, फसल अवशेषों, कृषि उप-उत्पादों से, जो मानव उपभोग के लिए अनुपयुक्त हैं, भी अच्छी तरह से पोषण प्राप्त कर सकती हैं।
- बकरी के मांस में कम कोलेस्ट्रॉल होता है और यह उन लोगों के लिए अपेक्षाकृत अच्छा होता है, जो विशेष रूप से कम ऊर्जा का आहार पसंद करते हैं।
- छोटे वसा ग्लोब्यूल की वजह से गाय के दूध की तुलना में बकरी का दूध पचाना आसान होता है और यह स्वाभाविक रूप से होमोजिनाइज्ड है।
- बकरी का मांस और दूध उत्पाद, त्वचा एवं फाइबर के मूल्यवर्धन के आधार पर कुटीर उद्योग स्थापित करने के लिए पर्याप्त है। गाय के दूध की तुलना में बकरी के दूध से एलर्जी नहीं होती है। इसमें एंटीफंगल और एंटीबैक्टीरियल गुण भी होते हैं।

बरबरी मादा

बरबरी नर

जमुनापारी मादा

जमुनापारी नर

बकरी की नस्लें एवं चयन

हमारे देश में कुल मिलाकर 34 बकरियों की नस्लें पंजीकृत हैं। इनमें से जमुनापारी, बरबरी, सिरोही, जखराना, बीटल आदि मैदानी क्षेत्रों में पालने योग्य नस्लें हैं। बकरियों की मुख्य नस्लें निम्न प्रकार से हैं:

मांस के लिए: ब्लैक बंगाल, गंजम

द्विकाजी (मांस एवं दूध): जमुनापारी, बरबरी, सिरोही, जखराना, बीटल

मैदानी क्षेत्रों के लिए उपयुक्त बकरी की नस्लें

बरबरी

रंग: सफेद रंग, गाढ़े लाल या भूरे रंग के धब्बे के साथ

सींग की आकृति और प्रकार: सींग मध्यम आकार, ऊपर व बाहर की तरफ से मुड़े हुए

विशेषतायें: छोटे आकार के पशु, छोटे सीधे सींग एवं छोटे नालीदार नुकीले कान।

यह बांधकर रखने (स्टॉलफेड) के लिए उपयुक्त है एवं इसकी प्रजनन क्षमता काफी अधिक है।

[1]कृषि विज्ञान केन्द्र, झांसी (उत्तर प्रदेश); [2]कृषि विज्ञान केन्द्र, जालंधर (पंजाब); [3]भारतीय चरागाह एवं चारा अनुसंधान संस्थान, झांसी (उत्तर प्रदेश); [4]उदय प्रताप कॉलेज, वाराणसी (उत्तर प्रदेश)

एक साल में पैदा होने वाले मेमनों की औसत संख्या: 1.43

औसत वजन (कि.ग्रा.): 36.7 (नर) तथा 20.3 (मादा)

औसत दुग्ध उत्पादन प्रति ब्यांत (कि.ग्रा.): 78.50

जमुनापारी

रंग: ज्यादातर सफेद, सिर और गर्दन पर भूरे या काले रंग के धब्बे के साथ।

सींग की आकृति और प्रकार: छोटे और तलवार के आकार के।

विशेषतायें: चेहरा बड़ा और उत्तल, बालों से घिरा हुआ। कान लंबे और लटकते हुए।

एक साल में पैदा होने वाले मेमनों की औसत संख्या: 1.5

सर्वश्रेष्ठ डेयरी बकरी, अधिकतम ऊंचाई एवं वजन वाली बकरी की नस्ल।

औसत वजन (कि.ग्रा.): 44.66 (नर) तथा 38.03 (मादा)

औसत दुग्ध उत्पादन प्रति ब्यांत (कि.ग्रा.): 201.96

सिरोही

रंग: मुख्य रूप से भूरा, हल्के या काले भूरे धब्बों के साथ।

सींग की आकृति और प्रकार: सींग ऊपर तथा पीछे की तरफ घुमावदार, छोटा आकार।

सिरोही मादा

सिरोही नर

विशेषतायें: सपाट और पत्ते की तरह लटकते कान।

जखराना

रंग: मुख्यत: काला, कान व थूथन पर सफेद धब्बों के साथ।

आवास का निर्माण एवं प्रबंधन

बकरी का आवास सुरक्षित, सूखा, हवादार,परजीवियों से मुक्त, साफ, प्रकाशयुक्त एवं पूर्व-पश्चिम दिशा उन्मुख होना चाहिए। एक आदर्श आवास बकरी को प्रतिकूल मौसम जैसे-बारिश, सर्दी, सीधे धूप एवं हवा से बचाने में समर्थ होना चाहिए। एक बकरी को मोटे तौर पर 1 वर्ग मीटर क्षेत्रफल की आवश्यकता होती है। इस आधार पर हम बकरियों की संख्या के आहार पर उनके आवास का क्षेत्रफल निर्धारित करते हैं। छत A आकार की बनवानी चाहिए। छत बनवाने के लिए एस्बेस्टास सीमेंट शीट का उपयोग कर सकते हैं। A के आकार की छत में केन्द्र रेखा की फर्श से ऊंचाई कम से कम 3 मीटर होनी चाहिए। बकरियों के आवास से लगा हुआ एक बाड़ा भी बनवाना चाहिए, जिसमें बकरियां दिन के समय घूम सकती हैं। बाड़े को जाली की फेंसिंग या फिर ईंटों की अनुमानत: 4 से 5 फीट ऊंची दीवार से बना सकते हैं। बाड़े का क्षेत्रफल बकरियों के आवास के क्षेत्रफल से दोगुना होना चाहिए। बाड़े में हमें सहजन, नीम इत्यादि के पेड़ लगाने चाहिए, जो कि बकरियों को छाया के साथ-साथ हरा चारा भी देते हैं। बकरियों के आवास के अंदर खाने के लिए नांद बनवानी चाहिए और इनके साथ पानी पीने की होद भी बनवानी चाहिए। नर बकरों को अलग रखा जाना चाहिए। मादा बकरियों को 60 तक के समूहों में रखा जा सकता है।

सारणी 1. भारतीय स्थितियों के लिए अनुशंसित बकरी आवास क्षेत्र की आवश्यकताएं

आयु समूह	कवर की गई जगह (वर्ग मीटर)	खुली जगह (वर्ग मीटर)
3 महीनों तक	0.20-0.25	0.40-0.50
3 से 6 महीने	0.50-0.75	1.00-1.50
6 से 12 महीने	0.75-1.00	1.50-2.00
वयस्क पशु	1.50	3.00
नर, गर्भवती या स्तनपान कराने वाली मादा	1.50-2.00	3.00-4.00

सारणी 2. खाने एवं पीने की नांद के माप

पशु का प्रकार	प्रति बकरी जगह (सें.मी.)	मेंजर/वाटर ट्रफ की चौड़ाई (सें.मी.)	मेंजर/वाटर ट्रफ की गहराई (सें.मी.)	मेंजर/वाटर ट्रफ की भीतरी दीवार की ऊंचाई (सें.मी.)
वयस्क बकरी	40-50	50	30	35
मेमने	30-35	50	20	25

सारणी 3. टीकाकरण अवधि

क्र.स.	रोग का नाम	प्राथमिक टीकाकरण	नियमित टीकाकरण
1	गलघोंटू (एच.एस.)	6 माह की आयु पर	साल में एक बार (बारिश शुरू होने के पूर्व)
2	आंत ज्वर (ई.टी.)	4 माह की आयु पर (यदि मां का टीकाकरण हुआ है) पहले सप्ताह की उम्र में (यदि मां का टीकाकरण नहीं हुआ है)	साल में एक बार (बारिश शुरू होने के पूर्व)
3	पी.पी.आर.	4 माह से ऊपर की आयु पर	साल में एक बार
4	मुंहपका-खुरपका (एफ.एम.डी.)	4 माह से ऊपर की आयु पर	एक वर्ष में दो बार (सितम्बर और मार्च)
5	बकरी चेचक	4 माह से ऊपर की आयु पर	साल में एक बार (दिसम्बर)

जखराना मादा

जखराना नर

सींग की आकृति और प्रकार: समतल और फैले हुए पीछे जाते हुए।

विशेषतायें: सीधा चेहरा, माथा संकीर्ण और हल्का उभरा हुआ।

बीटल

रंग: सामान्यत: काला/भूरे रंग के एवं सफेद धब्बों के साथ।

सींग की आकृति और प्रकार: सींग मध्यम आकार के क्षैतिज, थोड़े घुमावदार, पीछे और ऊपर की ओर।

विशेषतायें: ये लंबे पैर वाली बकरियों हैं, नाक रोमन आकार की एवं कान लंबे होते हैं।

ब्लैक बंगाल मादा

बकरियों में प्रजनन प्रबंधन

मादा बकरी 10-15 माह की आयु में यौन परिपक्वता प्राप्त कर लेती है, परंतु अच्छा आहार देने से इस समय को कम किया जा सकता है। नर बकरा 15 माह की आयु पर यौन परिपक्वता प्राप्त कर लेता है। 18 से 24 माह की आयु का एक बकरा 25 से 30 बकरियों के प्रजनन के लिए उपयोग किया जा सकता है।

बकरी का गर्भकाल 145-150 दिनों का होता है। उत्तम प्रबंधन स्थितियों को अपनाकर 2 साल की अवधि में 3 ब्यांत (किडिंग) प्राप्त की जा सकती हैं। अधिकतम गर्भधारण के लिए गर्मी के पहले लक्षण दिखाने के 12 घंटे बाद बकरी को गर्भधारण करवायें। बकरियों में अंत:प्रजनन (इनब्रीडिंग) को नियंत्रित करने के लिए नर बकरे को प्रजनन के हर 18 महीने के बाद बदला जाना चाहिए।

ब्लैक बंगाल

रंग: मुख्यत: यह काली,स्लेटी,भूरे एवं सफेद रंग की होती है।

सींग की आकृति और प्रकार: छोटे आकार के, ऊपर की ओर कुछ पीछे की ओर मुड़े हुए।

आहार एवं चारा प्रबंधन

जानवरों के चरने के लिए झाड़ियां, वृक्ष इत्यादि सुनिश्चित करें या खेत में चारा उगाकर भी इसकी आपूर्ति सुनिश्चित की जा सकती है। बकरी को दिन में लगभग 7 घंटे चराना चाहिए। मोटे तौर पर कुल आहार का 2/3वां भाग चारे से एवं 1/3वां भाग दाने से सुनिश्चित करना चाहिए। चारे का 60 प्रतिशत भाग सूखा चारा जैसे कि भूसा एवं 40 प्रतिशत भाग हरा चारा देना चाहिए। हरे चारे में 50 प्रतिशत दलहनी चारा (लोबिया, बरसीम, लूसर्न इत्यादि) देना चाहिए एवं 50 प्रतिशत भाग अनाज वाले चारा (चरी, जई, गिनी घास, नेपियर घास इत्यादि)

ब्लैक बंगाल नर

बीटल मादा

बीटल नर

देना चाहिए। अच्छी गुणवत्ता का हरा चारा (दलहनी एवं अनाज वाला चारा) होने पर दाने की मात्रा को काफी कम किया जा सकता है। मेमनों को जन्म के 5 दिनों तक कोलोस्ट्रम (मां का दूध) पिलाना चाहिए। 15 दिनों की आयु के बाद हरा दलहनी चारा भरपूर मात्रा में देना चाहिए। प्रजनन करने वाली बकरियों एवं बकरों को अलग से भी दाना देना चाहिए।

बकरियों के लिए उपयोग में लाये जाने वाले चारे एवं दाने का विवरण निम्न प्रकार से है:

चारा

- वृक्ष की पत्तियां-बबूल, नीम, पीपल, अर्जुन, सहजन इत्यादि
- झाड़ियां-बेरी, झरबेरी इत्यादि
- घास-गिनी, नेपियर, पेरा, अंजन, सैंजी
- बची हुई सब्जियां-गाजर, मूली, गोभी, फूलगोभी, पालक
- उगाया हुआ चारा
  - दलहनी: बरसीम, लूसर्न, लोबिया, ग्वार, उड़द, मूंग
  - अनाज वाला चारा: चरी, जई, मक्का, बाजरा
- फल एवं फली-बबूल, गूलर, पाकड़, बरगद, मटर

दाना

- अनाज-जौ, मक्का, बाजरा, कोदों, रागी, गेहूं, चावल
- अनाज उत्पाद-चोकर
- खली-सरसों, बिनौला, मूंगफली, सोयाबीन, तिल
- दाल की चूनी-चना, अरहर, मूंग, उड़द, मटर
- नमक-दाने का 1 प्रतिशत
- मिनरल मिक्स्चर-दाने का 2 प्रतिशत

रोगों से रोकथाम एवं बचाव

रोग के लक्षणों के लिए सतर्क रहें, जैसे-कम आहार का खाना, बुखार, असामान्य लक्षण या असामान्य व्यवहार। संक्रामक रोगों के फैलने पर तुरन्त रोगी पशु को स्वस्थ पशुओं से अलग करें और पशुचिकित्सक को दिखायें। पशुओं को नियमित रूप से कृमिनाशक दवा दें। स्वास्थ्य विकारों को कम करने के लिए स्वच्छ आहार और पानी प्रदान करें। सारणी-3 में दिए अनुसार अनुशंसित टीकाकरण करवायें।

बकरियों से प्राप्त उत्पाद एवं विपणन

बकरी पालन के विपणन योग्य उत्पादों में मांस के लिए पाले गए बकरे, चर्म, खाद, दूध शामिल हैं। व्यापारी, जो जीवित जानवरों को खरीद कर उसे मांस या मांस उत्पादों में परिवर्तित करेंगे, उन्हें जगह की उपलब्धता सुनिश्चित की जानी चाहिए। इसके अलावा पास के कृषि खेतों से खाद एवं दूध की मांग भी सुनिश्चित की जानी चाहिए। ■

विदेश

विलुप्त हो रही किसानों की मित्र मधुमक्खियां

इंग्लैंड के पूर्वी हिस्से से मधुमक्खियों की 17 प्रजातियां विलुप्त घोषित कर दी गई हैं। इनमें ग्रेट येलो बम्बल बी और पॉटर फ्लॉवर बी जैसी दुर्लभ मधुमक्खियां शामिल हैं, जो पूरी तरह से गायब हो चुकी हैं। यह इंग्लैंड का ऐसा हिस्सा है, जो खासतौर पर मधुमक्खियों के लिए लंदन में सबसे बेहतर जगह है। यह जानकारी वर्ल्ड वाइड फंड फॉर नेचर की रिपोर्ट में दी गई है। शोधकर्ताओं का कहना है कि मधुमक्खियों के रहने की जगह खत्म होना, कीटनाशकों का अधिक प्रयोग और प्रदूषण भी इनकी संख्या में तेजी से गिरावट के प्रमुख कारण हैं। रिपोर्ट में बताया गया कि मधुमक्खियों की संख्या में कमी उपभोक्ता से लेकर किसान तक को प्रभावित करेगी, जैसे सेब के उत्पादन पर इसका असर दिखेगा। शोधकर्ताओं का कहना है ब्रिटेन में सेब का उत्पादन तभी बेहतर होगा जब इनकी संख्या पर्याप्त होगी और सेहतमंद होंगी।

लंदन के 90 फीसदी जंगली पौधे और 75 फीसदी मुख्य फल, परागण पर निर्भर हैं। यहां की अर्थव्यवस्था में इनका 6 हजार करोड़ रुपए सालाना का योगदान है। वर्ल्ड वाइड फंड फॉर नेचर की चीफ एग्जीक्यूटिव तान्या स्टील का कहना है कि लंदन दुनिया के उन शहरों में से है, जहां प्रकृति को नुकसान पहुंच रहा है। इसके साथ ही परागण करने वाली यह बहुमूल्य जीव खतरे में है। दुनिया भर में इनकी संख्या में तेजी से कमी आ रही है, जल्द से जल्द इन्हें बचाए जाने की जरूरत है। रिपोर्ट में मधुमक्खियों की 228 प्रजातियों के आंकड़ों का विश्लेषण भी किया गया है।

यह शोध बेडफोर्डशायर, कैंब्रिजशायर, एसेक्स, हेर्टफोर्डशायर, नॉरफोल्क और सफोल्क में किया गया है। यह इलाका मॉस कार्डर बी, रेडशेंक्ड कार्डर बी और सी एस्टर कोलेट्स जैसी खास तरह की मधुमक्खियों के लिए जाना जाता है। रिपोर्ट के मुताबिक अभी भी 25 मधुमक्खियों की प्रजातियां ऐसी हैं, जिनका अस्तित्व खतरे में है। इसका कारण जलवायु परिवर्तन, रहने के लिए जगह खत्म होना और इनमें होने वाले रोगों को भी बताया गया है। रिपोर्ट में मधुमक्खियों को लंदन के लिए बेहद जरूरी जीव बताया गया है। चैरिटी संस्था, बग लाइफ की चीफ एग्जक्यूटिव मैट शेर्डलो का कहना है कि शोध में पाया गया है कि कई दुर्लभ और खास तरह की मधुमक्खियां जीवन के लिए संघर्ष कर रही हैं। लगातार तापमान बढ़ने से इनके लिए मुश्किलें भी बढ़ रही हैं। इनमें से 6 प्रजातियां ऐसी हैं, जो विलुप्त होने की कगार पर हैं और सिर्फ एक खास हिस्से में देखी गई हैं। ■

प्रस्तुतिः सोनिया चौहान

अगस्त के मुख्य कृषि कार्य

राजीव कुमार सिंह, विनोद कुमार सिंह, कपिला शेखावत, प्रवीण कुमार उपायाध्य और **एस.एस. राठौर**
सस्य विज्ञान संभाग, भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली-110012

"अगस्त माह खरीफ फसलों की अच्छी पैदावार के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण होता है। अधिकतर फसलें इस समय शुरुआती बढ़वार की अवस्था में होती हैं। अगर कुछ कारणों से फसल की बुआई जुलाई में नहीं हो पायी है तो इस समय चारे के लिए फसलों की बुआई कर सकते हैं। जिन क्षेत्रों में पर्याप्त वर्षा अथवा सिंचाई के समुचित साधन हैं, जैसे कि उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्र, पूर्वी और उत्तर-पूर्वी भाग, उनमें इस समय धान की फसल मुख्य फसल के रूप में खेतों में होती है। कई राज्यों में मूंगफली की फसल भी प्रमुख फसल के रूप में उगायी जाती है। इस समय शुष्क और अर्द्ध शुष्क मक्का, ज्वार, बाजरा, अरहर, मूंग, उड़द, ग्वार, सोयाबीन व तिल फसलों की सस्य प्रबंधन की आवश्यकता होती है। सब्जी वाली फसलों में कद्दूवर्गीय सब्जी के साथ भिंडी और अगेती मूली, फूलगोभी भी खेतों में इस समय होती है। इनमें भी उत्तम प्रबंधन की आवश्यकता होती है। इस समय के सभी सस्य प्रबंधन का उद्देश्य, खड़ी फसल के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान कर फसल की उत्तम बढ़वार और उपज को सुनिश्चित करना है।"

धान की फसल में देखभाल

- कुछ विशेष परिस्थितियों के कारण कई बार धान की रोपाई देर से की जाती है। कई बार ऐसा देखा गया है कि वर्षा बहुत अधिक हो जाती है या वर्षा का आगमन देर से होता है। इन परिस्थितियों में जलभराव के कारण समय पर रोपाई सम्भव नहीं हो पाती है। उपरोक्त दशा में कुछ विशेष सस्य क्रियाओं को अपनाया जाये तो पुरानी पौध के प्रयोग से धान की अच्छी पैदावार प्राप्त की जा सकती है। रोपाई की दूरी घटा देनी चाहिए जिससे प्रति इकाई पौधों की संख्या बढ़ जाये। ऐसी दशा में धान की रोपाई के लिए पंक्ति से पंक्ति एवं पौधे से पौधे की दूरी 20×10 एवं 15×10 सें.मी. होनी चाहिए और प्रति स्थान पर 3-5 पौधों की रोपाई करनी चाहिए। धान की देर से पकने वाली प्रजातियों की रोपाई इस माह बंद कर दें।
- धान में इस समय उर्वरक प्रबंधन महत्वपूर्ण होता है। नाइट्रोजन की बची हुई दो तिहाई मात्रा को दो भागों में समान रूप में डालें। नाइट्रोजन की पहली एक तिहाई मात्रा कल्ले निकलते समय तथा शेष एक तिहाई मात्रा पुष्पावस्था पर यूरिया खाद के रूप में प्रयोग करनी चाहिए। यदि खेत में जिंक की कमी के लक्षण हों तो 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट का 0.25 प्रतिशत बुझे हुए चूने के घोल के साथ 2-3 छिड़काव 15-20 दिनों के अंतराल पर करें। जिन क्षेत्रों में धान की सीधी बुआई की जाती है वहां यदि पौधों में लौह तत्व की कमी दिखाई दे तो 0.5 प्रतिशत फेरस सल्फेट का घोल बनाकर 15 दिनों के अंतराल पर दो से तीन छिड़काव करें।
- फसल से पूरी उपज प्राप्त करने के लिए खरपतवारों का समय से नियंत्रण बहुत अधिक महत्वपूर्ण है। खरपतवारों को प्रतिरोपण के बाद 20 से 40 दिनों में नियंत्रित कर लेना चाहिए। खरपतवार प्रबंधन को एकीकृत तरीके से करना चाहिए। धान के खेतों में खरपतवारों को नियंत्रित करने के लिए जल प्रबंधन हमेशा से ही एक प्रभावी और उन्नत विधि रही है। रोपित धान की फसल में निम्नलिखित खरपतवारनाशियों में से किसी भी एवं दवा का प्रयोग किया जा सकता है।
- धान की फसल में ब्लास्ट या झोंका रोग के नियंत्रण के लिए (1) कार्बेन्डाजिम एवं थाइरम (1:1) 3 ग्राम/कि.ग्रा. या फंगोरीन 6 ग्राम/कि.ग्रा. की दर से बीजोपचार करना चाहिए। (2) जुलाई के प्रथम पखवाड़े में रोपाई पूरी कर लें। देर से रोपाई करने पर झोंका रोग के लगने की आशंका बढ़ जाती है। (3) यदि पत्तियों पर भूरे रंग के धब्बे दिखाई देने लगें तो कार्बेन्डाजिम 500 ग्राम या हिनोसा 500 मि.ली. दवा 500-600 लीटर पानी में घोलकर एक हैक्टर में छिड़काव करें। इस तरह इन दवाओं

धान की प्रजाति पूसा बासमती-1718

धान की फसल में शीथ ब्लाइट

यह रोग भी फफूंद द्वारा फैलता है। इसके प्रकोप से पत्ती के पर 2-3 सें.मी. लंबे हरे से भूरे धब्बे पड़ते हैं, जो कि बाद में भूरे रंग के हो जाते हैं। धब्बों के चारों तरफ नीले रंग की पतली धारी सी बन जाती है। इसके नियंत्रण के लिए कार्बेन्डाजिम 500 ग्राम दवा 500 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें या हीनोसान 1 लीटर मात्रा का 500 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें। यदि रोग के लक्षण दिखाई दें तो नाइट्रोजन का छिड़काव कम कर दें।

सारणी : रोपित धान के लिए खरपतवारनाशी एवं उनकी अनुशंसित मात्रा

रसायन	उत्पाद (ग्राम/हैक्टर)	पानी की मात्रा (लीटर/हैक्टर)	प्रयोग का समय (रोपण के बाद दिन)
ब्यूटाक्लोर	1500-2000	500-600	रोपाई या बुआई के 3-4 दिनों बाद छिड़काव करें।
पेन्डीमेथेलिन	1000-1500	500-600	रोपाई या बुआई के 3-4 दिनों बाद छिड़काव करें।
प्रेटिलाक्लोर	500-1000	500-600	रोपाई या बुआई के 3-4 दिनों बाद छिड़काव करें।
एनिलोफॉस	500-600	500-600	रोपाई या बुआई के 3-4 दिनों बाद छिड़काव करें।
बैंथियोकार्ब	1000-1500	500-600	रोपाई या बुआई के 3-4 दिनों बाद छिड़काव करें।
ऑक्साडायजान	750-1000	500-600	रोपाई या बुआई के 3-4 दिनों बाद छिड़काव करें।
ऑक्सीफ्लोरफेन	150-250	500-600	रोपाई या बुआई के 3-4 दिनों बाद छिड़काव करें।
2,4-डी	500-1000	500-600	रोपाई या बुआई के 25-30 दिनों बाद छिड़काव करें।
साइलोहोप ब्यूटाइल	1000	500-600	रोपाई या बुआई के 15-20 दिनों बाद छिड़काव करें।
फेनाक्जाफाप	60-70	500-600	रोपाई या बुआई के 20-25 दिनों बाद छिड़काव करें।
पायरोजोसल्फ्यूरोन ईथाइल 10 डब्ल्यू.पी.	200	500-600	रोपाई या बुआई के 3 दिनों बाद छिड़काव करें।
बिस्पाइरीबैक सोडियम (नोमिनी गोल्ड)	20-30	500-600	रोपाई या बुआई के 15-25 दिनों बाद छिड़काव करें।
क्लेरीम्यूरॉन + मैटसल्फरॉन	20	500-600	रोपाई या बुआई के 25-30 दिनों बाद छिड़काव करें।

का छिड़काव 2-3 बार 10 दिनों के अंतराल पर आवश्यकतानुसार किया जा सकता है। (4) कार्बेन्डाजिम का 0.1 प्रतिशत की दर से पहला छिड़काव पौधशाला में, दूसरा छिड़काव कल्ले फूटते समय तथा तीसरा छिड़काव बालियां निकलते समय ग्रीवा संक्रमण रोकने के लिए करना चाहिए।

- **धान की फसल में झुलसा या जीवाणु पर्ण अंगमारी रोग:** यह रोग जीवाणु के द्वारा होता है। पौधे की छोटी अवस्था से लेकर परिपक्व अवस्था तक यह रोग कभी भी हो सकता है। इस रोग में पत्तियों के किनारे ऊपरी भाग से शुरू होकर मध्य भाग तक सूखने लगते हैं। सूखे पीले पत्तों के साथ-साथ राख के रंग के चकते भी दिखाई देते हैं। नियंत्रण के लिए (1) नाइट्रोजन की टॉपड्रेसिंग रोक देनी चाहिए। (2) पानी निकालकर प्रति हैक्टर स्ट्रेप्टोसाइक्लिन 15 ग्राम या 500 ग्राम कॉपर ऑक्सीक्लोराइड जैसे-ब्लाइटाक्स 50 या फाइटेलान का 500 लीटर पानी में घोल बनाकर 10-12 दिनों के अंतराल पर 2-3 छिड़काव कर देना चाहिए।
- धान की फसल में पत्ती लपेटक, तना छेदक और फुदका कीटों के नियंत्रण के लिए कारटैप हाइड्रोक्लोराइड 50 एस.पी. 2 ग्राम/लीटर या एसीफेट 75 एस.पी. 2 ग्राम/लीटर या मोनोक्रोटोफॉस 36 एस.एल. को 1.4 लीटर/हैक्टर या क्लोरपायरीफॉस 20 ई.सी. 2 मि.ली./लीटर दवा को 600-800 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें या

मक्का पीएचएम-1

कारटैप हाइड्रोक्लोराइड 4 जी. 25 कि.ग्रा./हैक्टर या कार्बोफ्यूरॉन 3 जी. 30 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से बुरकाव करें। भूरे पौध फुदकों के नियंत्रण के लिए 200 मि.ली. कॉन्फीडोर/हैक्टर को 600-800 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

- तना मक्खी ज्वार का एक प्रमुख कीट है। इसका प्रकोप पौधों के जमाव के लगभग 7 से 30 दिनों तक होता है। कीट की इल्लियां उगते हुए पौधों की अंकुर को काट देती हैं जिससे शुरू की अवस्था में ही पौधे सूख जाते हैं। इसके नियंत्रण के लिए फोरेट 10 जी या कार्बोफ्युरॉन 3 जी बुआई के समय 20 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से कूंड़ों में डालना चाहिए। तना छेदक कीट की सूंडियां या गिडार छोटे पौधों के अंकुर को काट देती हैं जिससे अंकुर सूख जाते हैं। इसका प्रभाव बुआई के 15 दिनों बाद से आरंभ होकर फसल में भुट्टे आने के समय तक होता है। ये कीट तने में सुरंग बनाकर अंदर ही अंदर तने के मुलायम भागों को खाते हैं, जिसके परिणामस्वरूप पौधे के वृद्धि भाग की मृत्यु हो जाती है। इसके नियंत्रण के लिए बुआई के 25 दिनों बाद कार्बोफ्युरॉन (3 प्रतिशत) दानेदार कीटनाशक 7.5 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से डालना चाहिए तथा 10 दिनों के बाद दूसरा छिड़काव इसी मात्रा में पौधों के अंकुर में करना चाहिए।

ज्वार, बाजरा और मक्का की फसल में देखभाल

दाने के लिए ज्वार की फसल में विरलीकरण (थिनिंग) करके पंक्तियों में पौधे से पौधे की दूरी 15-20 सें.मी. अवश्य कर दें। विरलीकरण का कार्य करने के बाद उन्नत/संकर प्रजातियों में 50 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टर की दर से टॉप ड्रेसिंग बुआई के 30-35 दिनों बाद खड़ी फसल में छिड़काव करें। असिंचित दशा में 2 प्रतिशत यूरिया का 1000 लीटर पानी में घोल बनाकर खड़ी फसल में छिड़काव करना अत्यंत लाभप्रद पाया गया है। ज्वार की फसल में पौधों की वृद्धि, फूल तथा दाना बनते समय सिंचाई करना आवश्यक होता है। ज्वार की फसल के लिए सिंचाई देने की चार क्रान्तिक अवस्थाएं हैं-प्रारंभिक बीज पौधे की अवस्था, भुट्टे निकलने से पहले, भुट्टे निकलते समय व भुट्टों में दाना बनने की अवस्थायें। ज्वार की अच्छी उपज लेने के लिए बुआई के 3 सप्ताह बाद निराई-गुड़ाई करने से खरपतवार नियंत्रण के साथ-साथ भूमि में वायु का संचार होता है तथा भूमि में नमी भी सुरक्षित रहती है। यदि किसी कारणवश निराई-गुड़ाई संभव न हो तो बुआई के तुरंत बाद एट्राजिन नामक खरपतवारनाशी की 0.75-1.0 कि.ग्रा. 700-800 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

- बाजरा की बुआई इस माह के प्रथम पखवाड़े तक पूरी कर लें। बुआई के 15-20 दिनों बाद विरलीकरण करके कमजोर पौधों को निकालकर लाइन में पौधों की आपस की दूरी 10-15 सें.मी. कर लेनी चाहिए। संकर उन्नत प्रजातियों में 85-108 कि.ग्रा. यूरिया की टॉप ड्रेसिंग/हैक्टर की दर से करें। बाजरे की फसल में फूल आने की स्थिति में सिंचाई करना लाभप्रद होता है। वर्षा न होने की स्थिति में 2-3 सिंचाइयों की आवश्यकता होती है। पौधों में फीटान होते समय, बालियां निकलते समय तथा दाना बनते समय नमी की कमी नहीं होनी चाहिए। बाजरा जल प्लावन से भी प्रभावित होता है, अत: ध्यान रहे कि खेत में पानी इकट्ठा न होने पाये। खरपतवार नियंत्रण के लिए 1.0 कि.ग्रा. एट्राजिन/हैक्टर की दर से 500-600 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव बुआई के बाद तथा अंकुरण से पूर्व करते हैं। इसके साथ-साथ 20-40 दिनों के अंदर एक बार कसौला या खुरपी से खरपतवार निकाल दें।
- मक्का में बुआई के 40-45 दिनों बाद 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टर की दर से दूसरी व अंतिम टॉप ड्रेसिंग

अरहर

इस समय अरहर की फसल में उकठा रोग, फाइटोफ्थोरा, अंगमारी व पादप बांझ रोग की रोकथाम के लिए 2.5 मि.ली. डाइकोफॉल दवा 1 लीटर पानी में घोलकर एवं 1.7 मि.ली. डाइमेथोएट दवा 1 लीटर पानी में घोलकर पौधों पर छिड़काव करें। जिस खेत में उकठा रोग का प्रकोप अधिक हो उस खेत में 3 से 4 साल तक अरहर की फसल नहीं लेनी चाहिए। अरहर के साथ ज्वार की सहफसल लेने से किसी हद तक उकठा रोग का प्रकोप कम हो जाता है। ट्राइकोडर्मा 4 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज को उपचारित करना चाहिए। इन दलहनी फसलों में फलीछेदक कीट का प्रकोप भी इसी महीने आता है। इसके लिए जब 70 प्रतिशत फलियां आ जाएं तो मोनोक्रोटोफॉस 36 एसएल को 300 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। जरूरत पड़ने पर 15 दिनों बाद फिर छिड़काव कर सकते हैं।

नमी होने पर नर मंजरी निकलते समय करनी चाहिए। मक्का में बाली बनते समय पर्याप्त नमी होनी चाहिए अन्यथा उपज 50 प्रतिशत तक कम हो जाती है। सामान्यत: यदि वर्षा की कमी हो तो क्रांतिक अवस्थाओं (घुटने तक की ऊंचाई वाली अवस्था, झंडे निकलने वाली अवस्था, दाना बनने की अवस्था) पर एक या दो सिंचाइयां कर देनी चाहिए जिससे उपज में गिरावट न हो। सिंचाई के साथ-साथ मक्का में जल निकास भी अत्यंत आवश्यक है। यदि मक्का मेड़ों पर बोई गई है तो खेत के अंत में जल निकास का समुचित प्रबंध होना चाहिए।

- खरीफ के मौसम में खरपतवारों का प्रकोप ज्यादा होता है जिससे 50-60 प्रतिशत उपज में गिरावट आ सकती है। इसलिए मक्का के खेत को शुरु के 45 दिनों तक खरपतवारमुक्त रखना चाहिए। खरपतवारों के प्रबंधन के लिए 2-3 निराई-गुड़ाई खुरपी या हैंड-हो या हस्तचालित अथवा शक्तिचालित यंत्रों से खरपतवारों को नष्ट करने से मृदा में पड़ने वाली पपड़ी भी टूट जाती है और पौधों की जड़ों को अच्छे वायु संचार से बढ़वार में मदद मिलती है। खरपतवारों के रासायनिक नियंत्रण के लिए एट्राजिन की 1-1.5 कि.ग्रा./हैक्टर मात्रा का छिड़काव करके भी नियंत्रित किया जा सकता है। एट्राजिन की आवश्यक मात्रा को 800 लीटर पानी में घोल बनाकर बुआई के बाद परंतु जमाव से पहले छिड़क देना चाहिए।
- मक्का में मेडिस, टर्सिकम लीफ ब्लाइट, डाउनी मिल्ड्यू इत्यादि रोग कभी-कभी दिखाई देते हैं। इन रोगों का प्रकोप देर से बोई जाने वाली फसल में ज्यादा पाया जाता है। जीवाणु जनित तना विगलन तथा पाइथियम वृंत गलन रोग पौधों में पुष्पन के दौरान जल-भराव की स्थिति में पाया जाता है। इसी प्रकार, फसल की बढ़वार के समय पुष्पणोत्तर अवस्था में कमी के दबाव के कारण पुष्पणोत्तर वृंत गलन के लक्षण भी दिखाई देते हैं। इस प्रकार की रोगों को रोकने के लिए रोगरोधी प्रजातियों की समय से बुआई करनी चाहिए, जबकि मेडिस, टर्सिकम लीफ ब्लाइट की रोकथाम के लिए 2.5 कि.ग्रा./हैक्टर जिनेब को 800 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। यदि रोग की रोकथाम न हो तो 10-15 दिनों के अंतराल पर दूसरा छिड़काव अवश्य कर देना चाहिए। मक्का की फसल में पत्ती लपेटक कीट की रोकथाम के लिए क्लोरोपायरीफॉस 1.0 मि.ली पानी में मिलाकर या इमानेकटिन बेंजोएट 1.0 मि.ली. लीटर दवा 4.0 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।
- मंडुवा, झंगोरा, रामदाना, कुटू, मंडुवा की फसल में तनाछेदक कीट का प्रकोप होता है। इसके नियंत्रण के लिए क्लोरोपायरीफॉस 20 ई.सी. की 20 मि.ली. दवा प्रति नाली की दर से 15-20 लीटर पानी में घोल कर छिड़काव करें।
- तनाछेदक कीट से बचाव के लिए कार्बेरिल का 2.5 मि.ली. लीटर दवा का घोल प्रति लीटर 500 लीटर पानी में मिलाकर या लिन्डेन 6 प्रतिशत ग्रेन्यूल अथवा कार्बोफ्यूरान 3 प्रतिशत ग्रेन्यूल 20 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें। 8 ट्राइकोकार्ड प्रति हैक्टर लगाने से भी इसकी रोकथाम की जा सकती है।

दलहनी फसलों की देखभाल

- मूंग व उड़द की शीघ्र पकने वाली उन्नत प्रजातियों की बुआई करें। इसके लिए मूंग की प्रजाति जैसे-पी.डी.एम. -54, नरेन्द्र मूंग-1, पंत मूंग-2, पंत मूंग-4, पंत मूंग-5 एवं उड़द की प्रजाति जैसे-पंत उड़द-35, पंत उड़द 31, पंत उड़द-19, पंत उड़द-40, नरेन्द्र उड़द-1 बुआई कर सकते हैं। यदि मृदा की जांच नहीं कराई गई है

मूंग

तिल

खरीफ मौसम की फसल के लिए जून के अंतिम सप्ताह से लेकर जुलाई के प्रथम सप्ताह को तिल की अधिक उपज के लिए उपयुक्त पाया गया है। अगस्त में मानसून में देरी होने या खेत खाली होने की दशा में तिल की अल्पावधि की प्रजातियों की बुआई कर सकते हैं। खरीफ की फसल में आवश्यकतानुसार सिंचाई करें। ध्यान रहे कि तिल में पुष्पन एवं फली में बीज भरने की अवस्था में मृदा में नमी की कमी न हो। इन अवस्थाओं पर नमी की कमी होने पर फसल की सिंचाई अवश्य करें। खरीफ के मौसम में आवश्यकतानुसार अधिक जल की निकासी अथवा नमी संरक्षण के उचित उपाय करें। सामान्यत: दो निराई-गुड़ाई करने से खरपतवारों पर नियंत्रण पाया जा सकता है। पहली निराई-गुड़ाई फसल बोने के 15-20 दिनों के अंदर एवं दूसरी निराई-गुड़ाई, बुआई के 35-40 दिनों के अंदर करनी चाहिए। दूसरी निराई-गुड़ाई पर नाइट्रोजन की शेष मात्रा का भी प्रयोग करें। निराई-गुड़ाई के लिए श्रमिकों की कमी होने पर, तिल में 1.0 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से फ्लूक्लोरेलिन सक्रिय दवा को 400-500 लीटर पानी में घोलकर बुआई से पहले खेत में छिड़कने से भी खरपतवारों को नष्ट किया जा सकता है। एलाक्लोर (1.75 कि.ग्रा.) या पेन्डीमेथिलीन (1 कि.ग्रा.) के प्रयोग से भी खरपतवारों पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

उड़द

तो 10-15 कि.ग्रा. नाइट्रोजन तथा 40 कि.ग्रा. फॉस्फोरस प्रति हैक्टर की दर से बुआई के समय कूंड़ों में डालना चाहिए। अरहर, मूंग, उड़द व लोबिया आदि दलहनी फसलों में फूल आने पर मिट्टी में हल्की नमी बनाये रखें। इससे फूल झड़ेंगे नहीं तथा अधिक फलियां लगेंगी व दाने भी मोटे तथा स्वस्थ्य होंगे, परंतु खेतों में वर्षा का पानी खड़ा नहीं होना चाहिए तथा जल निकास अच्छा होना चाहिए।

- बुआई के प्रारंभिक 4-5 सप्ताह तक खरपतवार की समस्या अधिक रहती है। पहली सिंचाई के बाद निराई करने से खरपतवार नष्ट होने के साथ-साथ भूमि में वायु का संचार भी होता है। मूल ग्रन्थियों में क्रियाशील जीवाणुओं द्वारा वायुमंडलीय नाइट्रोजन एकत्रित करने में सहायक होता है। खरपतवारों के रासायनिक नियंत्रण के लिए 2.5-3.0 मि.ली प्रति लीटर पानी में घोलकर बुआई के 2 से 3 दिनों के अंदर अंकुरण के पूर्व छिड़काव करने से 4 से 6 सप्ताह तक खरपतवार नहीं निकलते हैं। चौड़ी पत्ती तथा घास वाले खरपतवार को रासायनिक विधि से नष्ट करने के लिए पेन्डीमेथिलीन (30 ई.सी.) 3.30 लीटर या एलाक्लोर 4.0 लीटर या फ्लूक्लोरोलिन (45 ई.सी.) नामक रसायन की 2.20 लीटर मात्रा को 800 लीटर पानी में मिलाकर बुआई के तुरन्त बाद या अंकुरण से पहले छिड़काव करें। बुआई के 15-20 दिनों के अंदर कसोले से निराई-गुड़ाई कर खरपतवारों को नष्ट कर देना चाहिए।
- मूंग, उड़द एवं अरहर की फसल में पीले मोजैक की रोकथाम के लिए डाइमोथेएट (30 ई.सी.) 1.0 लीटर या मिथाइल-ओ डिमिटान (25 ई.सी.) एक लीटर मात्रा को 600-800 लीटर पानी में घोलकर आवश्यकतानुसार 10-15 दिनों के अंतराल पर 2-3 छिड़काव करें या इमिडाक्लोरोप्रिड 0.5 मि.ली./लीटर पानी 500 लीटर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें।

मूंगफली, सूरजमुखी, सोयाबीन और तिल की फसल में देखभाल

- मूंगफली की फसल में बुआई के 35-40 दिनों तक पुष्पावस्था से पेगिंग के होते हैं। इस समय पर पानी की कमी होने पर मूंगफली की उत्पादकता

मूंगफली

काफी कम हो जाती है। इसलिए इस समय यदि वर्षा नहीं होती है तो सिंचाई की व्यवस्था करनी चाहिए। इस समय यदि पेगिंग हो गयी है तो पौधों के चारों ओर मिट्टी चढ़ाने का कार्य करने से फली का विकास अच्छा होता है। पैदावार में बढ़ोतरी होती है। इस समय सूक्ष्म पोषक तत्व

सोयाबीन

जैसे बोरॉन की कमी दिखने पर 0.2 प्रतिशत बोरेक्स के घोल का प्रयोग करें।, इसी प्रकार जिंक की कमी होने पर 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट और 0.25 प्रतिशत चूने का प्रयोग करना चाहिए। मूंगफली फसल बोने के 40 दिनों बाद इनडोल एसिटिक एसिड 0.7 ग्राम को एल्कोहल (7 मि.ली.) में घोलें तथा 100 लीटर पानी में मिलाकर फसल पर छिड़काव करें। इससे 1 सप्ताह बाद 6 मि.ली. इथराल (40 प्रतिशत) 100 लीटर पानी में घोलकर छिड़कने से मूंगफली की पैदावार 17-27 प्रतिशत तक बढ़ जाती है। कॉलर रॉट से मूंगफली की रोकथाम के लिए फफूंदीनाशक कार्बेन्डाजिम या मैंकोजेब का प्रयोग करना चाहिए। मूंगफली के टिक्का रोग की रोकथाम के लिए खड़ी फसल पर जिंक मैंग्नीज कार्बामेट 2.0 कि.ग्रा. या जिनेब 75 प्रतिशत की 2.5 कि.ग्रा. दवा प्रति हैक्टर की दर से 1000

सूरजमुखी

लीटर पानी में घोलकर 10 दिनों के अंतराल पर 2-3 छिड़काव करें।

- सूरजमुखी की फसल में बुआई के 15-20 दिनों बाद फालतू पौधे निकालकर पंक्तियों में पौधे से पौधे की दूरी 20 सें.मी. रखें। बुआई के 25 दिनों बाद 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टर की दर से टॉप ड्रेसिंग करें। फसल की बुआई के 40-45 दिनों बाद दूसरी निराई-गुड़ाई के साथ पौधों पर 15-20 सें.मी. मिट्टी चढ़ा दें। बुआई के 20-25 दिनों बाद पहली सिंचाई के बाद निराई-गुड़ाई करना अति आवश्यक है। इससे खरपतवार भी नियंत्रित होते हैं एवं रसायनों द्वारा खरपतवार नियंत्रण के लिए पेन्डीमेथिलीन 30 ई.सी. की 3-3 लीटर मात्रा 600 से 800 लीटर पानी घोलकर प्रति हैक्टर की दर से बुआई के 2-3 दिनों के अंदर छिड़काव करने से खरपतवारों का जमाव नहीं होता है। पहली सिंचाई बुआई के 20 से 25 दिनों बाद हल्की या स्प्रिंक्लर से करनी चाहिए। बाद में आवश्यकतानुसार 10 से 15 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करते रहना चाहिए। कुल 5-6 सिंचाइयों की आवश्यकता पड़ती है। फूल निकलते समय दाना भरते समय बहुत हल्की सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। इससे पौधे जमीन में गिरने न पाए, क्योंकि जब दाना पड़ जाता है तो सूरजमुखी के फूल के द्वारा बहुत ही पौधे पर वजन आ जाता है, जिससे की गिर सकता है।
- सोयाबीन और तिल में भी खरपतवार नियंत्रण के साथ-साथ होने वाली प्रमुख रोग और कीटों को नष्ट करने के लिए उपाय करने चाहिए। सोयाबीन की फसल पर पीला मोजैक रोग का विशेष प्रभाव पड़ता है। इसकी रोकथाम के लिए डाईमेथोएड (30 ई.सी.) या मिथाइल-ओ-डिमेटान (25 ई.सी.) की एक लीटर मात्रा को 800-1000 लीटर पानी में घोलकर आवश्यकतानुसार 10-15 दिनों के अंतराल पर 1-2 छिड़काव करें। चितकबरा पीले धब्बे के लिए कन्फीडोर की 250 मि.ली/हैक्टर 25 एवं 45 दिनों पर तथा पत्ती धब्बा रोग के लिए बाविस्टीन की 250 ग्राम दवा 600 लीटर पानी/हैक्टर की दर से छिड़काव करें। खेत में दीमक का प्रकोप दिखाई देने पर मोनोक्रोटोफॉस (36 ई.सी.) 750 मि.ली. या क्लोरोपायरीफॉस (20 ई.सी.) 2.5 लीटर या क्यूनालफॉस (25 ई.सी.) 1.5 लीटर दवा को 600-800 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें।
- **फाइलोडी:** यह रोग माइक्रो प्लाज्मा द्वारा होता है। इस रोग में पौधों का पुष्पविन्यास पत्तियों के विकृत रूप में बदलकर गुच्छेदार हो जाता है। इस रोग का वाहक फुदका कीट है। इसकी रोकथाम के लिए तिल की बुआई समय से पहले न की जाये। बुआई के समय कूंड़ में फोरेट 10 जी. 15 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से प्रयोग किया जाये। मिथाइल-ओ-डिमेटान 25 ई.सी. 1 लीटर/हैक्टर की दर से छिड़काव करना चाहिए।
- सूरजमुखी की फसल में बुआई के 15-20 दिनों बाद फालतू पौधे निकालकर पंक्तियों में पौधे से पौधे की दूरी 20 सें.मी. करें। बुआई के 25 दिनों बाद 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टर की दर से टॉप ड्रेसिंग करें। फसल की बुआई के 40-45 दिनों बाद दूसरी निराई-गुड़ाई के साथ पौधों पर 15-20 सें.मी. मिट्टी चढ़ा दें। बुआई के 20-25 दिनों बाद पहली सिंचाई के बाद निराई-गुड़ाई करना अति आवश्यक है। इससे खरपतवार भी नियंत्रित होते है एवं रसायनों द्वारा खरपतवार नियंत्रण के लिए पेन्डीमेथिलीन 30 ई.सी. की 3-3 लीटर मात्रा 600 से 800 लीटर पानी घोलकर प्रति हैक्टर की दर से बुआई के 2-3 दिनों के अंदर छिड़काव करने से खरपतवारों का जमाव नहीं होता है। पहली सिंचाई बुआई के 20 से 25 दिनों बाद हल्की या स्प्रिंक्लर से करनी चाहिए। बाद में आवश्यकतानुसार 10 से 15 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करते रहना चाहिए। कुल 5-6 सिंचाइयों की आवश्यकता पड़ती है। फूल निकलते समय और दाना भरते समय बहुत हल्की सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। इससे पौधे जमीन में गिरने न पाए, क्योंकि जब दाना पड़ जाता है तो सूरजमुखी के फूल के द्वारा बहुत ही पौधे पर वजन आ जाता है, जिससे की गिर सकता है।

गन्ना फसल में देखभाल

- वर्षा न होने की स्थिति में 15 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करें। हल्की मिट्टी वाले क्षेत्र में फसल को गिरने से बचाने तथा देर से फूटने व कल्लों को निकलने से रोकने के लिए वर्षा प्रारंभ होते ही पौधे की जड़ों पर अच्छी तरह मिट्टी चढ़ा देनी चाहिए। अगस्त-सितम्बर में फसल की बंधाई कर देनी चाहिए, ताकि फसल गिरने न पाए। फसल गिरने से उपज तथा गन्ने में शक्कर की मात्रा दोनों कम हो जाती हैं।
- गुरदासपुर बेधक एवं सफेद मक्खी का प्रभावी नियंत्रण के लिए जल निकास की व्यवस्था करें। मोनोक्रोटोफॉस 36

गन्ना

कपास की फसल में देखभाल

कपास में फूल आने के समय नाइट्रोजन खाद की बाकी आधी मात्रा दे दें, जोकि संकर कपास में 1/2 बैग, अमेरिकन कपास में 2/3 बैग होती है। नाइट्रोजन खाद देने से पहले खेत में काफी नमी होनी चाहिए, परंतु पानी खड़ा नहीं होना चाहिए। वर्षा के बाद अतिरिक्त जल का निकास तुरंत होना चाहिए। यदि फूल आने पर खेत में नमी नहीं होगी तो फूल और फल झड़ जाएंगे तथा पैदावार कम हो जायेगी। एक तिहाई टिंडे खुलने पर आखिरी सिंचाई कर दें। इसके बाद कोई सिंचाई न करें। खेत में वर्षा का पानी खड़ा न होने दें। फूल आने पर नेप्थलीन ऐसीटिक एसिड 70 सी.सी. का छिड़काव अगस्त के अंत या सितम्बर के शुरू में करें। इस छिड़काव से फूल व टिंडे सड़ते नहीं व पैदावार ज्यादा मिलती है।

ई.सी. या क्लोरोपायरीफॉस 20 ई.सी. 1-1.5 लीटर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें। अगस्त में गन्ने पर चढ़ने वाले खरपतवार यथा आइपोमिया प्रजाति (बेल) की बढ़वार होती है। इसे खेत से उखाड़कर फेक दें अथवा मेट सल्फ्यूरान मिथाइल 4 ग्राम प्रति हैक्टर की दर से 500-600 लीटर पानी में घोल बनाकर, जब इसमें छोटे पौधे खेत में दिखाई पड़ें प्रयोग करना चहिये।

- अत्यधिक व असामयिक वर्षा के कारण सामान्यत: पौधों की ऊंचाई 1.5 मीटर से अधिक हो जाती है, जिससे उपज पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। अतएव 1.5 मीटर से अधिक ऊंचाई वाली मुख्य तने की ऊपर वाली सभी शाखाओं की छंटाई सिकेटियर (कैंची) से कर देनी चाहिए। इस छंटाई से कीटनाशक रसायनों के छिड़काव में आसानी होती है तथा छिड़काव का प्रयोग पर पूरी तरह संभव होता है।
- मूल-विगलन रोग में पौधों की जड़ सड़ जाती है। छाल के नीचे पीला सा पदार्थ जमा हो जाता है। इस रोग से बचने के लिए अगेती बुआई करनी चाहिए। वीटावैक्स 0.1 प्रतिशत और ब्लाईटोक्स 0.3 प्रतिशत प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से बीज को उपचारित करना चाहिए।
- **कपास का पत्ती लपेटक कीट:** इसकी इल्लियां पत्तियों को लपेटकर एक खोल सा बना लेती हैं और अंदर पत्तियों को खाती हैं। इसकी रोकथाम के लिए (1) गर्मियों में गहरी जुताई करें, ताकि प्यूपा धूप से नष्ट हो जाएं (2) इसके लार्वा को एकत्रित करके नष्ट कर देना चाहिए (3) फसल पर पत्ती लपेटने वाले कीट दिखाई देने पर अंडा पैरासिटोइड-ट्राइकोग्रामा 1.5 लाख प्रति हैक्टर की दर से खेत में प्रयोग करना चाहिए।

चारे वाली फसलों की देखभाल

- ज्वार, बाजरा, मक्का, लोबिया व ग्वार आदि चारे वाली फसलों में वर्षा न होने या सूखे की स्थिति होने पर हल्की सिंचाई अवश्य करनी चाहिए। अगेती बोयी गयी चारे वाली फसलों की कटाई समय से करते रहें।

कृषि वानिकी

- जैट्रोफा नमी वाली भूमि तथा दिसंबर-जनवरी को छोड़कर किसी भी जगह किसी भी समय लगाया जा सकता है। पौधों की आयु 47-70 वर्ष होती है तथा पहले वर्ष में ही फसल दे देता है। इससे 27,000 रुपये प्रति एकड़ पैदावार मिलती है, जोकि फसल की

कृषि वानिकी

नीबू

नीबू में सिट्रस कैंकर रोग, जिसमे रोग के लक्षण पत्तियों से प्रारंभ होकर बाद में टहनियों, कांटों और फलों पर आ जाते हैं, की रोकथाम के लिए गिरी हुई पत्तियों को इकट्ठा कर नष्ट कर दें। रोगयुक्त टहनियों की काट-छांट कर बोर्डो मिश्रण (5:5:50) का छिड़काव करें। ब्लाइटाक्स 0.3 प्रतिशत (3 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी में घोलकर) का छिड़काव पेड़ पर करें। नीबूवर्गीय फलों में रस चूसने वाले कीट आने पर मेलाथियान 2 मि.ली./लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

नीबू के पौधे में नीले फफूंद रोग को प्रतिबंधित करने के लिए फलों को बोरेक्स या नमक से उपचारित करने से रोग को रोका जा सकता है। फलों को कार्बेन्डाजिम या थायोफनेट मिथाइल 0.1 प्रतिशत से उपचारित करके भी रोग नियंत्रित किया जा सकता है।

आयु की दर से बढ़ती जाती है। पौधे को 12×12 फीट की दूरी पर या मेड़ों पर भी लगाया जा सकता है। जैट्रोफा के खेत में हल्दी, अदरक, चना, मटर, मसूर आदि की मिश्रित खेती भी हो सकती हैं। सफेदा, यूकेलिप्टिस, बबूल, शीशम तथा नीम अगस्त में बंजर भूमि में लगा सकते हैं। इनकी लकड़ी ईंधन, उद्योगों का कच्चा माल, बिजली के खम्बे, फर्नीचर बनाने के काम आती है तथा काफी लाभदायक है। सफेदा

फूलगोभी

अगस्त में फूलगोभी की मध्यम अगेती किस्में जैसे-पूसा संकर-2, पूसा मेघना, पूसा शरद एवं मध्यम पछेती फूल गोभी के किस्में जैसे-पूसा पौषजा, पूसा शक्ति प्रजातियों की बुआई के लिए बीज की मात्रा 350-400 ग्राम/हैक्टर एवं बुआई का समय जुलाई अंत से अगस्त प्रारंभ व अगस्त अंत से सितंबर प्रारंभ नर्सरी तैयार करें। नर्सरी तैयार करने के लिए मिट्टी को कवकनाशी जैसे फर्मेल्डिहाइड की 25-30 मि.ली. मात्रा एक लीटर पानी में मिलाकर नर्सरी वाले क्षेत्र में छिड़कना चाहिए। नर्सरी को पॉलीथीन शीट से ढक दें। इसके लगभग 15 दिनों बाद बुआई करें। फूलगोभी की प्रजातियों की रोपाई के लिए प्रति हैक्टर 20-25 टन सड़ी गोबर की खाद या 8 टन नाडेप कम्पोस्ट खेत की तैयारी के समय तथा 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस और 40 कि.ग्रा. पोटाश अंतिम जुताई या रोपाई से पूर्व खेत में अच्छी तरह मिला दें। फूलगोभी की फसल में डैम्पिंग ऑफ के नियंत्रण के लिए एप्रॉन एस.डी. 35 या थिरम 2 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से बीजोपचार तथा एंथ्रेक्नोज के लिए डायथेन एम-45 या बाविस्टीन 2 ग्राम/लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।

लाल बंदगोभी की अगेती किस्म

के पेड़ अगस्त में खेतों, नालियों और सड़कों के किनारे 10 फीट दूरी पर तथा सघन पौध रोपण में 10×10 फीट पर लगाएं। बबूल तथा शीशम को 17×17 फीट तथा नीम को 27×27 फीट पर लगायें। पेड़ लगाने के 3 माह बाद 20 ग्राम यूरिया दूसरे साल बाद 70 ग्राम तथा 3, 4, 6 तथा 7 साल 100 ग्राम यूरिया प्रति पेड़ पानी के साथ दें। नर्सरी में तैयार पौध कृषि विभाग या कृषि विश्वविद्यालयों से समय पर संपर्क करके प्राप्त कर सकते हैं।

सब्जी वाली फसलों का उत्पादन एवं प्रबंधन

- बंदगोभी की पूसा अगेती, गोल्डन एकड़ की बुआई इस माह में की जा सकती है। अच्छी प्रकार तैयार कर खेत में 20-25 टन सड़ी हुई गोबर की खाद और 120-60-60 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटाश का प्रयोग करना चाहिए। बंदगोभी की नर्सरी में डम्पिंग ऑफ से बचाव के लिए ब्लैटॉक्स का 205 एम.एल. प्रति लीटर पानी में मिलाकर प्रयोग करना चाहिए।
- खरपतवार नियंत्रण के लिए रोपाई से पहले बेसालीन 2.5 लीटर या स्टॉम्प 3.3 लीटर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव कर हल्की सिंचाई करें।
- अगेती फसल में सिंचाई रोपाई के तुरन्त बाद तथा उसके पश्चात साप्ताहिक अंतराल पर व मध्यम व पछेती फसल में 10-15 दिनों के अंतराल पर करें।
- खरीफ मौसम में टमाटर की पूसा

टमाटर

भिंडी

भिंडी की फसल में बुआई के 50 दिनों बाद 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन या 87 कि.ग्रा. यूरिया प्रति हैक्टर की दर से दूसरी टॉप ड्रेसिंग करें एवं भिन्डी की कटाई सही समय पर करें। समान्यत: फूल आने के 8-10 दिनों के भीतर भिन्डी की फली की तुड़ाई अवश्य करें। फलीछेदक कीटों के प्रकोप से बचने के लिए मैलाथियान (50 ई.सी.) की 500-600 मि.ली. मात्रा का छिड़काव करते हैं। विशेष ध्यान रखें कि कीटनाशी का प्रयोग करने के 7-8 दिनों तक फली की तुड़ाई न करें।

सदाबहार, पूसा रोहिणी, पूसा-120, पूसा गौरव, पी-एच-2 और पी-एच-8 की रोपाई इस माह कर सकते हैं।

- हरी प्याज की रोपाई से पूर्व 20-25 टन सड़ी गोबर की खाद या 8 टन नाडेप कम्पोस्ट खेत में मिला दें। अंतिम जुताई के बाद 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस और 40 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर की दर से खेत में अच्छी तरह मिला दें।
- शिमला मिर्च, टमाटर एवं गोभी की मध्यवर्गीय प्रजातीयों की पौधशाला में बिजाई पूरे माह साप्ताहिक अंतराल पर कर सकते हैं।
- बैंगन, मिर्च व भिंडी की फसलों में निराई-गुड़ाई व जल निकास तथा रोग एवं कीटों से रोकथाम की व्यवस्था करें। बैंगन में रोपाई के 30 दिनों बाद 50 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, मिर्च में 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन तथा फूलगोभी में 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन की टॉप ड्रेसिंग प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करें।
- इस समय बैंगन में कोक्सीनेल्ला बीटल

परवल

का प्रकोप होता है। इसकी रोकथाम के लिए क्विनाल्फॉस 2.0 मि.ली. प्रति लीटर की दर से छिड़काव करना चाहिए। साथ ही शूट और फ्रूट बोरर के लिए कार्बोरिल 2.0 ग्राम प्रति लीटर की दर से प्रयोग करना चाहिए।

- पूसा संकर-3 लौकी की बुआई अगस्त तक की जा सकती है। इस किस्म में लौकी की तुड़ाई 50-55 दिनों में शुरू हो जाती है।
- कद्दूवर्गीय सब्जियों में प्रति हैक्टर 25 कि.ग्रा. नाइट्रोजन या 54 कि.ग्रा.

सब्जियों की खेती

पुष्प व सुगंध वाले पौधों का प्रबंधन

- रजनीगंधा, ग्लोडियोलस में आवश्यकतानुसार सिंचाई, निराई-गुड़ाई करें। पोषक तत्वों के मिश्रण का छिड़काव करें एवं रजनीगंधा के स्पाइक की समय पर कटाई करें।

रजनीगंधा

ग्लोडियोलस

- गुलाब के नर्सरी स्टॉक की क्यारियों में बदलाई करें। गुलाब की फसल में जल निकास की व्यवस्था करें तथा आवश्यकतानुसार निराई-गुड़ाई व रेड स्केल कीट का नियंत्रण करें।
- फूलों के खेतों में वर्षा का पानी निकालने का इंतजाम करें। फूलों में आवश्यकतानुसार निराई-गुड़ाई कर खरपतवारों को समय पर निकालते रहें।
- ग्रीष्म ऋतु के फलों का समय पूरा

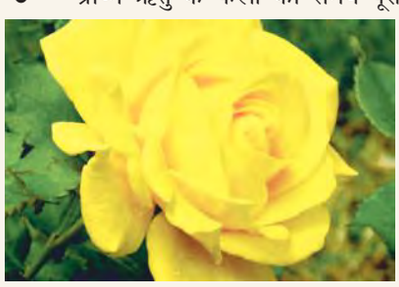

गुलाब

हो गया है। इन्हें धीरे-धीरे निकाल दें तथा क्यारियों को खुदाई कर दें। मिट्टी को रोगरहित बनाने के लिए दवाइयां डालें। सर्दियों के फूलों की बीजाई की तैयारी शुरू कर दें।

यूरिया को दो भागों में बांटकर बुआई के 30 एवं 45 दिनों बाद टॉप ड्रेसिंग करें। कददूवर्गीय सब्जियों में मचान बनाकर उस पर बेल चढ़ाने से पैदावार में वृद्धि होगी और फल स्वस्थ होंगे। सभी सब्जियों में उचित जल निकास की व्यवस्था करें।

- गाजर की पूसा मेघाली, पूसा यमदाग्नि व पूसा वृष्टि एवं मूली की पूसा चेतकी व पूसा देसी किस्मों की बुआई अगस्त तक की जा सकती है, जो कि 40-50 दिनों में तैयार हो जाती है।
- अदरक की फसल में 25 कि.ग्रा. नाइट्रोजन या 54 कि.ग्रा. यूरिया की दूसरी टॉप ड्रेसिंग बुआई के 60-70 दिनों बाद करें। हल्दी की फसल में प्रति हैक्टर 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन या 87 कि.ग्रा. यूरिया की दूसरी टॉप ड्रेसिंग बुआई के 60-70 दिनों बाद करें।
- बेबीकॉर्न की अगस्त में बुआई करने से अच्छी गुणवत्ता वाली बेबीकॉर्न प्राप्त होता है।
- परवल लगाने के लिए 15 अगस्त के आसपास का समय सर्वोत्तम रहता है। परवल की रोपाई 2×2 मीटर की दूरी पर 50 सें.मी. व्यास के 30 सें.मी. गहरे गड्ढे खोदकर उसमें आधा भाग मिट्टी एक चौथाई सड़ी गोबर की खाद व एक चौथाई बालू, 100 ग्राम नीम की खली, 5 ग्राम फ्यूराडान मिलाकर जमीन से 15 सें.मी. ऊंचाई तक भर देना चाहिए। मचान बनाकर परवल लगाने की दूरी 1.5×1.5 मीटर रखते हैं।

आंवला

- खीरा तथा अन्य सब्जियों में फलछेदक कीटों का हमला होने का खतरा बना रहता है। किसान भाइयों को दवाइयों का छिड़काव समय-समय पर करते रहना चाहिए। दवाई छिड़कने के एक सप्ताह बाद ही फल तोड़े तथा पानी से सब्जी अच्छी तरह धोयें। इस फसल में 1/2 बोरा यूरिया छिड़कें इससे फल अच्छे लगेंगे।
- मिर्च की फसल में आवश्यकतानुसार निराई-गुड़ाई, सिंचाई व जल निकास की उचित व्यवस्था करें। पौधों की अच्छी वृद्धि नहीं है तो 50 कि.ग्रा. यूरिया खड़ी फसल में डालें तथा कीटों तथा रोगों से बचने के लिए 0.2 प्रतिशत इंडोफिल-45 व 0.1 प्रतिशत मेटासिस्टाक नामक दवा का घोल बनाकर एक छिड़काव अवश्य करें।
- ग्वार तैयार फलियों की तुड़ाई कर बाजार भेजने की व्यवस्था करें। कीटों से बचाव के लिए 0.2 प्रतिशत मेटासिस्टाक नामक दवा का घोल बनाकर एक छिड़काव अवश्य करें।
- मूली की फसल में आवश्यकतानुसार निराई-गुड़ाई व सिंचाई की व्यवस्था करें। कीटों से बचाव के लिए 0.15 प्रतिशत मेटासिस्टाक नामक दवा का घोल बनाकर एक छिड़काव अवश्य करें।
- पालक पूर्व में बोई गई फसल में आवश्यकतानुसार निराई-गुड़ाई व सिंचाई करें। तैयार पत्तियों की कटाई करें और गड्डियां बनाकर बाजार भेजें।

पपीता

बागवानी फसलों का उत्पादन एवं प्रबंधन

- आंवला में एक वर्ष के पौधे के लिए प्रति पेड़ 10 कि.ग्रा. गोबर या कम्पोस्ट खाद एवं 50 ग्राम नाइट्रोजन व 35 ग्राम पोटाश जो क्रमशः बढ़कर 10 वर्ष या उससे ऊपर के वृक्षों में 100 कि.ग्रा. गोबर या कम्पोस्ट खाद एवं 500 ग्राम नाइट्रोजन व 350 ग्राम पोटाश इस माह में प्रयोग करें।
- पपीता के पौधों पर फूल आने के समय 2 मि.ली. सूक्ष्म तत्वों को एक लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। पनामा विल्ट के रोकथाम के लिए बैविस्टीन

के 1.5 मि.ग्रा. प्रति लीटर पानी के घोल से पौधों के चारों तरफ की मिट्टी को 20 दिनों के अंतराल से दो बार छिड़काव कर देना चाहिए।

- नीबू, बेर, केला, जामुन, पपीता, आम, अमरूद, कटहल, लीची, आंवला के नये बाग लगाने का काम इस महीने पूरा कर लें। अपने क्षेत्र को ध्यान में रखकर ही अच्छी किस्मों के पौधे लगायें। इस माह में नीबू और लीची में गूटी बांधने का उपयुक्त समय होता है।
- केले में प्रति पौधा 100 ग्राम पोटाश एवं 55 ग्राम यूरिया पौधे से 50 सें.मी. दूर गोलाई में प्रयोग कर हल्की गुड़ाई कर भूमि में अच्छी तरह मिला दें।
- बेर में मिलीबग कीट की रोकथाम के लिए मोनोक्रोटोफॉस (36 ई.सी.) 1.5 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।
- मानसून के समय बागानों में जल निकास का उचित प्रबंध होना चाहिए। इसके साथ ही लगातार बागों में निगरानी रखें और रोग आदि के लक्षण दिखने पर शीघ्र उपचार करें।
- आम के बागों से फलों की तुड़ाई के बाद वृक्षों की रोग वाली और फालतू शाखाओं की कटाई-छंटाई करें। रोगी व सूखी टहनियों को काटकर जला दें। नये वृक्षों में 500 ग्राम नाइट्रोजन प्रति वृक्ष की दर से प्रयोग करें। आम में शल्क कीट तथा शाखा गांठ कीट की रोकथाम के लिए मिथाइल पैराथियान 1.0 मि.ली. या डाई मेथोएट 1.5 मि.ली. दवा प्रति लीटर पानी में से किसी एक दवा का 15 दिनों के अंतराल पर बदलकर दो बार छिड़काव करें। तराई क्षेत्रों में आम के पौधों पर गांठ बनाने वाले कीड़े गॉल मेकर की रोकथाम के लिए मोनोक्रोटोफॉस 0.5 प्रतिशत या डाईमेथोएट 0.06 प्रतिशत दवा का छिड़काव करें। आम के पौधों पर लाल रतुआ एवं श्यामव्रण (एंथ्रेक्नोज) की रोग पर कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 0.3 प्रतिशत दवा का छिड़काव करें।
- आम एवं लीची में रेडरस्ट और सूटी मोल्ड की रोकथाम के लिए कॉपर ऑक्सीक्लोराइड की 30 ग्राम प्रति लीटर या ब्लाइटॉक्स 0.3 प्रतिशत (3 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी में घोलकर) का छिड़काव वृक्षों पर करें। लीची की फसल में लीफ माइनर की रोकथाम के लिए मेटासिस्टॉक्स 2.0 मि.ली. प्रति लीटर का प्रयोग करें। लीची की छाल को खाने वाले कीड़ों की रोकथाम के लिए इनके द्वारा बनाए गए छिद्रों में क्लोरोफार्म पेट्रोल या केरोसिन को रूई की मदद से उपचार कर नष्ट करना चाहिए।
- अमरूद के पौधों का रोपण इस माह में 5×5 मीटर की दूरी पर करना चाहिए और पौध लगाते समय प्रति गड्ढा 25-30 कि.ग्रा. गोबर की खाद डालनी चाहिए। इसके लिए प्रथम वर्ष में 260 ग्राम यूरिया, 375 ग्राम सिंगल सुपर फॉस्फेट और 500 ग्राम पोटेशियम सल्फेट प्रति पौधा डालना चाहिए। इसके बाद आयु के आधार पर उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए। अमरूद की वर्षा के समय की फसल से पैदावार तो अधिक मिलती है, किन्तु गुणवत्ता खराब होती है, इसलिए इस मौसम में फल न लेकर शरद ऋतु में लेने के लिए आवश्यक कृषि कार्य करने चाहिए।
- अमरूद के पौधों में जस्ता तत्व की कमी होने से पत्तियों का पीला पड़ना, छोटा होना तथा पौधों की बढ़वार कम हो जाने के लक्षण मिलते हैं। इसके नियंत्रण के लिए 2 प्रतिशत जिंक सल्फेट का छिड़काव अथवा 300 ग्राम जिंक सल्फेट का पौधों की जड़ों में देना लाभप्रद पाया गया है।
- कटहल के पौधे में तनाबेधक कीट के नियंत्रण के लिए छिद्र को किसी पतले तार से साफ करके नुवाकान का घोल (10 मि.ली./लीटर) अथवा पेट्रोल या केरोसिन तेल की चार-पांच बूंदें रूई में डालकर गीली चिकनी मिट्टी से बंद कर दें। इस प्रकार वाष्पीकृत गंध के प्रभाव से पिल्लू मर जाते हैं एवं तने में बने छिद्र धीरे-धीरे भर जाते हैं।

आम

अमरूद

New Arrival
2019 Edition

HANDBOOK OF HORTICULTURE

VOLUME 1 & 2

HANDBOOK OF HORTICULTURE

Volume 1 & 2

The Indian Council of Agricultural Research has brought out the Second enlarged and revised edition of the Handbook of Horticulture. Horticultural crops are gaining more and more importance as they have been instrumental in improving the economic condition of the farmer and contributing significantly to the national GDP. This new revised edition has been divided into 2 volumes – Volume 1 contains General Horticulture and Production Technologies (Fruit, Vegetable and Tuber crops) and Volume 2 has Production Technologies (Flower, Plantation, Spices crops and Medicinal and aromatic plants), Plant Protection and Post-harvest Management. The earlier chapters have been thoroughly revised and new chapters have been added. It is hoped that the readers will find this Second edition more useful and informative.

Technical Specifications

Pages : i-xxxiv + 1-682 (Vol. 1)
i-xxiii + 683-1218 (Vol. 2)
Price : ₹ 2000/- (Vol.1 & 2) Postage ₹ 200/-
ISBN : 978-81-7164-187-1

Copies available from:

Business Manager
Directorate of Knowledge Management in Agriculture (DKMA)
Indian Council of Agricultural Research
Krishi Anusandhan Bhavan, Pusa, New Delhi 110012
Tele: 011-25843657; e-mail: bmicar@icar.org.in, businessuniticar@gmail.com

(आवरण पृष्ठ II का शेष...)

पशुओं को शहद खिलाना लाभकारी नहीं

भी हो सकता है। बाजार में उपलब्ध विभिन्न प्रकार के आहार में भी शीरा मिलाया जाता है, ताकि इसके स्वाद में सुधार हो सके। स्वाद बेहतर होने पर ही पशु बाजार में मिलने वाला आहार खाना पसंद करते हैं। आहार में पाए जाने वाले विभिन्न आहारीय घटक जैसे-कार्बोहाइड्रेट्स, प्रोटीन, वसा एवं खनिज भी सस्ते स्रोतों से ही उपलब्ध करवाए जाते हैं, ताकि आहार का लागत मूल्य अधिक न बढ़ने पाए।

पशुओं की वसा आवश्यकताओं के लिए इन्हें विभिन्न तैलीय बीजों से प्राप्त खली खिलाई जा सकती है। इन्हें तेल पिलाना न केवल महंगा है बल्कि इससे रुमेन सूक्ष्मजीवियों पर भी दुष्प्रभाव पड़ता है। आजकल बाजार में बाईपास वसा आसानी से उपलब्ध है, जो पशुओं की संक्रमणकालीन ऊर्जा आवश्यकताओं की पूर्ति करने में अच्छी तरह सक्षम है। बाईपास वसा आहार के ऊर्जा घनत्व को बढ़ाने का एक आसान तरीका है। जब पशु गाभिन होते हैं, तो इनकी भूख कुछ कम हो जाती है। ये अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप आहार लेने में असमर्थ होते हैं। इन परिस्थितियों में बाईपास वसायुक्त आहार कम मात्रा में होने पर भी दैहिक जरूरतों को पूर्ण करने में सक्षम हो सकता है। अपने पशुओं को महंगे घी एवं तेलों का आहार खिलाने से बचना चाहिए ताकि इनकी पाचन क्षमता सामान्य बनी रहे।

पशुओं को आहार देते समय ध्यान देने योग्य बातें

पशुओं को संतुलित आहार खिलाते समय इस बात का सदैव ध्यान रखें कि इन्हें आहारीय रेशे पर्याप्त मात्रा में मिलते रहें। गाय को अपने आहार में लगभग 18 प्रतिशत एसिड डिटर्जेंट तथा 25 प्रतिशत न्यूट्रल डिटर्जेंट फाइबर की आवश्यकता होती है। यदि गायों की आहार ग्राह्यता फिर भी कम हो तो इनके आहार में बाईपास वसा द्वारा ऊर्जा का घनत्व बढ़ा देना चाहिए, ताकि कम मात्रा में खाने पर भी इनकी ऊर्जा की आवश्यकता पूरी हो सके। गाय को दुग्ध उत्पादन के लिए ऊर्जा लगातार मिलनी चाहिए, अन्यथा इसका दूध कम हो सकता है। अत: अपेक्षाकृत कम शुष्क पदार्थ ग्राह्यता के दौरान भी अधिक प्रोटीनयुक्त आहार खिलाकर दुग्धावस्था के लिए आवश्यक ऊर्जा जुटाई जा सकती है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए गायों को बेहतरीन चारे व दाने के साथ-साथ बाईपास वसा भी खिलायी जा सकती है। आहार में वसा की कुल मात्रा 7 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए अन्यथा यह सेल्युलोजयुक्त आहार की पाचन क्षमता को कम कर सकता है।

संतुलित आहार से बढ़ाएं पशु उत्पादन क्षमता

पशुओं को आवश्यकता से अधिक स्टार्चयुक्त अथवा घुलनशील शक्करयुक्त पदार्थ जैसे-दाना या आहार खिलाने से रुमेन में अम्लता बढ़ती है। अत्यधिक अम्लता रुमेन किण्वन को कम करके पाचन क्षमता पर विपरीत प्रभाव डालती है। इससे पशुओं में एसिडोसिस अथवा लंगड़ेपन जैसे विकार उत्पन्न होने का खतरा हो सकता है। कई पशु भूसा कम खाते हैं तथा किसान भी उन्हें घुलनशील प्रोटीन एवं कार्बोहाइड्रेट्युक्त पदार्थ देते रहते हैं, जो उपापचय को असामान्य बना देता है। पशुओं को भूसा खिलाने के लिए इसे शीरे में मिलाकर दिया जा सकता है ताकि इसकी ग्राह्यता बढ़ाई जा सके। उल्लेखनीय है कि दूध में वसा की मात्रा भूसा खिलाने से ही बेहतर होती है। अत: पशुओं के आहार में कार्बोहाइड्रेट्स, वसा, प्रोटीन, विटामिन, खनिज के साथ-साथ रेशों का भी अत्यधिक महत्व है, जो केवल भूसे से ही प्राप्त हो सकते हैं। ■

'मोलासिस' से पशु आहार बनें पोषक

'मोलासिस' अथवा शीरा शुगर मिल से निकलने वाला एक उप-उत्पाद है, जो अत्यंत सस्ती दरों पर सुलभ हो जाता है। इसकी तुलना गुड़ से करना तर्कसंगत नहीं है। इसके गुण गुड़ से काफी भिन्न हैं तथा गुड़ महंगा भी है। शीरे की सहायता से आहार की गुणवत्ता को बहुत कम खर्च में बेहतर बनाया जा सकता है। शीरे में 74 प्रतिशत शुष्क पदार्थ, 6.5 प्रतिशत प्रोटीन, 6.5 प्रतिशत शक्कर तथा 12.5 मेगा जूल ऊर्जा प्रति कि.ग्रा. शुष्क भार के आधार पर मिलती है। इसमें सोडियम, पोटेशियम, मैग्नीशियम, सल्फर की मात्रा तो अधिक किन्तु फॉस्फोरस कम मात्रा में होता है। इसमें लगभग 1 प्रतिशत तक कैल्शियम पाया जाता है। तांबा, जस्ता, मैंगनीज तथा लोहे जैसे सूक्ष्म खनिज भी इसमें प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। इसे भूसे में मिलाने से न केवल स्वाद बेहतर होता है, बल्कि पशु इसे अधिक मात्रा में भी ग्रहण करते हैं।

अधिक दूध देने वाली गायों को लगभग 3 कि.ग्रा. तक शीरा प्रतिदिन उनके आहार में मिलाकर खिलाया जा सकता है। इसे पानी की बराबर मात्रा में मिलाकर चारे पर छिड़कते हैं, जिससे पशु इसे बड़े चाव से खाते हैं। पशुओं की दैनिक आहार ग्राह्यता बढ़ने से इनकी दुग्ध उत्पादन क्षमता में सुधार होता है। यह पशुओं के आहार को संतुलित रखने के लिए भी खिलाया जाता है। इससे रेशों की पाचकता बढ़ती है। पशु दुहते समय आसानी से दूध छोड़ देते हैं। यह गर्मियों के मौसम में पशुओं को तनाव से बचाता है। अपेक्षाकृत कम गुणवत्ता वाले आहार के साथ शीरा देने से पशु स्वस्थ रहते हैं। इनकी उत्पादन क्षमता में भी कोई विशेष गिरावट नहीं होती। जिन पशुपालकों के पशु कम आहार खाते हैं, वे आहार में शीरा मिलाकर पशुओं की आहार ग्राह्यता में आसानी से वृद्धि कर सकते हैं।

पंजीकरण संख्या 14252/57 पंजीयक, समाचार पत्र, भारत सरकार
दिल्ली पोस्टल पंजीकृत संख्या DL(C)-12/1145/10-12
ISSN 0023-1088
मूल्य: ₹30

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के प्रकाशन

JOURNALS

HANDBOOKS

भाकृअनुप
ICAR

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें:
व्यवसाय प्रबंधक
कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद-I, पूसा, नई दिल्ली 110 012
टेलिफैक्स: 91-11-25843657; ई-मेल: bmicar@icar.org.in
वेबसाइट: www.icar.org.in

डा. सतेन्द्र कुमार सिंह, परियोजना निदेशक, कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय द्वारा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के लिए प्रकाशित तथा मैसर्स चन्दु प्रेस, 469, पटपड़गंज इंडस्ट्रियल एस्टेट, दिल्ली 110 092 से मुद्रित। सम्पादक: अशोक सिंह